दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

Date of Printing = 05-06-24
प्रकाशन दिनांक = 05-06-24

जून २०२४

वर्ष ५३ : अङ्क ८
दयानन्दाब्द : २००
विक्रम-संवत् : ज्येष्ठ-आषाढ़ २०८१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२५

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

कुल पृष्ठ २८
एक प्रति १५.०० रु०

वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- वेदोपदेश २
- करतार सिंह सराभा जिसे अंग्रेज सबसे..... ३
- वेदों में दी गई तीन अग्नियां-३ ६
- झाड़-फूंक से इलाज-कब जागेगा इंडियन... ९
- छोटी-छोटी पर बड़ी बातें – २ ११
- भारतीय समाज के मुक्तिदाता थे स्वामी... १३
- ईश्वर साकार है या निराकार ? १५
- ईद ! १८
- नारी-गौरव : एक न्यायपूर्ण निष्कर्ष २०
- भागवत पुराण में झूठे आरोप लगाकर.... २४
- महर्षि की दूरदर्शिता !!! २७

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ४००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ६००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

॥ ओ३म् ॥

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

**वेदोपदेश—यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः।
कृधी ष्वस्माँ अदितेरनागान्व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥**

—ऋ० ४।१२।४

शब्दार्थ—हे **यविष्ठ** = अतिशय बलवन् ! **अचित्तिभिः** = अज्ञानों के कारण **यत्+चित्** = जो कुछ भी **पुरुषत्रा** = पुरुषों में **ते** = तेरा **कच्चित्** = कदाचित् **आगः** = अपराध, पाप **चकृमा** = हम करते हैं, **अस्मान्** = हमें **अदितेः** = अदिति का **सु** = अच्छी प्रकार **अनागान्** = अनपराधी **कृधि** = बना। हे **अग्ने** = अग्ने! हमारे **एनांसि** = पापभावों को **विष्वक्** = सब प्रकार से **वि+शिश्रथः** = विशेषरूप से शिथिल कर ।

व्याख्या—अज्ञान=उलटे ज्ञान अथवा ज्ञान के अभाव के कारण मनुष्य पाप गर्त में गिरता है। ज्ञान के अभाव की अपेक्षा उलटा ज्ञान भयङ्कर होता है। वह विपर्य्य, विपरीत ज्ञान, मिथ्याज्ञान, अविद्या आदि कई नामों से पुकारा जाता है। अविद्या का लक्षण योगदर्शन में इस प्रकार किया गया है—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या । -यो० द० २।५

अनित्य को नित्य समझना, अपवित्र को पवित्र मानना, दुःख में सुख का भान करना और अनात्मा में आत्मा का ज्ञान करना अविद्या है। धन-धान्य, महल-अटारी, पर्वत, नदी- नाले, सूर्य-चन्द्र, पृथिवी आदि नाशवान् अतएव अनित्य पदार्थों को नित्य मानना मूर्खता नहीं तो क्या है? ऐसे ही नित्य जीव आदि को अनित्य मानना अविद्या है। अपवित्र पदार्थों—मलमूत्रादि को पवित्र मानना अज्ञान है। शरीर अपवित्र है, किन्तु पामरजन इसे पवित्र मानते हैं। स्त्री पुरुष का मुख चाटती है और पुरुष स्त्री पर मोहित होकर अकरणीय कार्य करता है। शरीर के अन्दर और बाहर की स्थिति पर तनिक विचार कीजिए। इसके गन्देपन का निश्चय हो जाएगा। मलमूत्र, विष्ठा का थैला पवित्र कैसे? किन्तु संसार का अधिक भाग इसे पवित्र मान विपर्य्यय ज्ञान में फँस रहा है। इसी प्रकार पवित्र को अपवित्र मानना भी उलटा ज्ञान है। संसार में कितना दुःख है, जन्म-मरण के चक्कर में कितनी पीड़ा है, किन्तु कितनों को इसका भान होता है? कितने इससे छुटकारा पाने की चेष्टा करते हैं ? इस दुःख बहुल को सुख मानना अविद्या है। इसी प्रकार मोक्षसुख को दुःख मानना भी अविद्या है।

किसी का धन चोरी हो जाए तो वह कहता है, मैं लुट गया । लुटा तो धन किन्तु मान बैठा वह अपने-आपको लुटा हुआ । 'मैं काणा हूँ'- काणापन तो आँख में है, किन्तु कह रहा है, 'मैं काणा हूँ।' मैं रोगी हूँ-रोग शरीर में हैं, किन्तु अपने-आपको रोगी मान रहा है । धन, इन्द्रिय, शरीर सभी अनात्मा हैं, किन्तु अविद्या की महिमा देखो, इन सबको आत्मा मान रहा है । यह महती अविद्या है।

(शेष पृष्ठ २७ पर)

करतार सिंह सराभा जिसे अंग्रेज सबसे खतरनाक क्रान्तिकारी मानते थे

–धर्मपाल आर्य

ये वो दौर था जिस दौर में देश की माताएं अपनी कोख से बच्चे नहीं बल्कि क्रान्तिकारी पैदा कर रही थीं। इस दौर एक बच्चा बड़ा हो रहा था नाम था करतार सिंह सराभा लेकिन ये किस्सा इतना भर नहीं है। इस किस्से में आजादी का आन्दोलन है, बलिदान है और साथ में है आर्यसमाज।

24 मई, सन 1896 को लुधियाना के सराभा जिले में एक जाट सिक्ख परिवार में पिता मंगल सिंह और माता साहिब कौर के घर एक बच्चे का जन्म हुआ था। बच्चे का नाम रखा करतार सिंह। बचपन में ही पिता चल बसे उनके दादाजी ने उनका लालन–पालन किया। जब 10 साल के हुए तो देखा पंजाब में एक आन्दोलन 'पगड़ी संभाल' आंदोलन। जिसमें अंग्रेजों के सामने झुकने से इंकार किया जा रहा था। किन्तु पढ़ाई में तेज तरार करतार ने हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा अच्छे नम्बर से उत्तीर्ण की। घर में कोई कमी ना थी। साधन सम्पन्न परिवार था। एकलौता वारिस था करतार। जब वह 16 वर्ष के हुए तो उनके दादाजी ने उन्हें कैमिस्ट्री के अध्ययन के लिए बर्कले स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय भेज दिया।

सबसे पहले तो करतार को सैन फ्रांसिस्को पहुँचते ही भेदभाव का सामना तब करना पड़ा जब इमिग्रेशन डिपार्टमेंट में उनसे ऐसे सवाल पूछे गए जिसके लिए एक 16 वर्ष का लड़का तैयार नहीं था। वहां पहुँचने पर एक घटना ने उनका जीवन सदा के लिए बदल दिया। करतार ने जब देखा कि भारतीयों से अपमानजनक सवाल पूछे जा रहे थे। जबकि अन्य क्षेत्रों और देशों से आए प्रवासियों को मंजूरी दी जा रही थी। जब इसकी वजह पूछी तो उन्हें बताया गया कि भारतीय गुलाम हैं। इसलिए वे दूसरे दर्जे के नागरिक हैं।

दूसरा वो जिस मकान में रहा करते थे, उसकी मालकिन एक दिन पूरा घर सजा रही थी। सराभा ने उनसे घर सजाने का कारण पूछा तो मकान मालकिन ने बताया कि आज के दिन उनका देश आजाद हुआ था, इसीलिए वो घर सजा कर इस दिन की खुशी मना रही है। इस घटना के बाद सराभा की आत्मा चीत्कार कर उठी कि क्या हम लोग ऐसा दिन नहीं मना सकते ! बस यही कुछ घटनाएँ थीं जिन्होंने सराभा के आँखों में आजादी के सपने जगा दिए और भारत में ब्रिटिश राज के अस्तित्व पर सवाल उठाना शुरू कर दिया।

साल था 1912 में अमेरिका के पोर्टलैंड में भारतीय लोगों का बहुत बड़ा सम्मलेन हुआ। हरनाम सिंह, सोहन सिंह भकना सहित कई भारतीय इस सम्मलेन में हिस्सा लेने पहुंचे। इसी दौरान आर्य समाज की विचारधारा से प्रभावित और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के परम शिष्य लाला हरदयाल ने वहां अपना भाषण दिया। जिसे सुन कर सराभा बहुत प्रभावित हुए। ये भारत का वो दौर था जब देश के नौजवान कांग्रेस की नरम दल नीतियों से बहुत खफा हो चुके थे, उन्हें लगने लगा था कि बिना हथियार उठाये आजादी नहीं पाई जा सकती।

फिर क्या था आजादी के लिए चल रही मुहिम तेज हो चली। आर्य समाज के सिपाहियों ने विदेशी धरती पर **"गदर आंदोलन"** की नींव

रख दी। ये अपनी तरह का पहला आंदोलन था जिसकी नींव विदेश में रखी गई थी। यहां, भारतीय विद्यार्थी इस आंदोलन की सभा में बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रहे थे। गदर पार्टी का एक ही मकसद था किसी भी तरह से भारत की आजादी। यहां इनका एक ही नारा था "देश की आजादी के लिये, हर तरह से आहूत होना ।"

एक किस्म से कहो यह साम्राज्यवाद के खिलाफ आर्य समाज के कार्यकर्ताओं का हथियारबंद संघर्ष का ऐलान और भारत की पूरी आज़ादी की मांग करने वाला आन्दोलन था। करतार सिंह ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और पार्टी ने उन्हें अपने मुखपत्र पर पंजाबी भाषा का संस्करण निकालने के लिए प्रभारी बनाया। पंजाबी के अलावा गदर को हिंदी, उर्दू, बंगाली, गुजराती और **पश्तो** में प्रकाशित किया गया और इसे पूरी दुनिया में भारतीयों के पास भेजा जाने लगा। अखबार में अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों का उल्लेख किया जाता। देखते ही देखते इसने प्रवासी भारतीयों के बीच में क्रांतिकारी विचारों की अलख जगा दी।

जल्द ही, प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया और गदर पार्टी के सदस्यों ने यह फैसला किया कि यही समय है जब इसका स्थान बदलते हुए देशवासियों को लामबंद किया जाए। कारण ब्रिटिश विश्व युद्ध में स्वयं को बचाने में व्यस्त हो गये थे, तो वहीं 5 अगस्त, 1914 को गदर के संस्करण में अंग्रेजों के खिलाफ एक और युद्ध की घोषणा की गई और इसकी प्रतियों को दुनिया भर के भारतीयों के बीच विशेष रूप से ब्रिटिश छावनियों में भारतीय सैनिकों के बीच बांटा जाने लगा। गदर पार्टी इतनी बड़ी बन गई थी कि इसकी खबर इंग्लिश के अखबारों में छपनी शुरू हो गई ।

गदर पार्टी के कार्यकर्ता विदेशों से अपने वतन वापिस लौटने लगे। मात्र 18 साल के करतार सिंह सराभा जी भी 15 सितंबर 1914 को सत्येन सेन और विष्णु गणेश पिंगले के साथ भारत आ गये और उन्होंने कोलकाता में युगांतर के जतिन मुखर्जी से मुलाकात की। मुखर्जी ने उनका संपर्क रासबिहारी बोस से करवाया। करतार सिंह ने बोस से बनारस में मुलाकात की और उन्हें 20,000 और गदर सदस्यों के आने और क्रांति की योजना की जानकारी दी।

अंग्रेजों के खिलाफ आर्य समाज द्वारा खड़ी की गयी क्रांति का यह सबसे बड़ा बिगुल था। किन्तु दुर्भाग्य से, अंग्रेजों को क्रांतिकारियों की योजना की भनक पड़ गई और उन्होंने क्रांतिकारियों को पकड़ने के लिए व्यापक अभियान छेड़ दिया। बहुत से गदर सदस्यों को बंदरगाहों पर ही गिरफ्तार जाने लगा। लेकिन वे करतार सिंह को अपनी योजना पर आगे बढ़ने से नहीं रोक सके। करतार सिंह पंजाब को क्रांति का मुख्य स्थल बनाने की तैयारियों के लिए पंजाब चले गये।

इसके अलावा मेरठ, आगरा, बनारस, इलाहाबाद, अंबाला, लाहौर और रावलपिंडी में ब्रिटिश सेना में शामिल भारतीय सैनिकों का मन बदलने और उन्हें इस आंदोलन में शामिल करने पर करतार ने ध्यान केन्द्रित किया और इसके साथ-साथ लुधियाना में एक छोटे स्तर की हथियार निर्माण इकाई भी स्थापित कर ली। रासबिहारी बोस सहित अन्य वरिष्ठ नेताओं के साथ विद्रोह की तिथि 21 फरवरी, 1915 निर्धारित की गई और मियां मीर एवं फिरोजपुर की छावनियों में हमले और अंबाला में बगावत की योजना बना ली गई। किन्तु भारत माता का दुर्भाग्य यहां भी, एक देशद्रोही ने बगावत से एक दिन पूर्व ही उनके साथ दगाबाजी की और बहुत से क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिए गये। पर किसी तरह करतार सिंह अंग्रेजों से बच निकलने में कामयाब

रहे।

करतार के इरादे मजबूत थे और आजादी का सूरज देखने की चाह ने अपने इरादों से पीछे हटने से इंकार कर दिया। और 2 मार्च, 1915 को सरगोधा में चक संख्या 5 पर 22 घुड़सवार सेना के भारतीय सिपाहियों को उकसाने और बगावत की चिंगारी फूंकने का एक अति साहसिक अंतिम प्रयास किया। लेकिन इस बार, 22 घुड़सवार सेना के रिसालदार गंडा सिंह ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उन पर लाहौर षडयंत्र नामक मामले में लाहौर में अन्य गदर सदस्यों के साथ मुकदमा चल पड़ा। सितम्बर, 1915 में फैसला सुनाया गया। 10 गदर सदस्यों को फांसी और 17 की फांसी की सजा को कारावास में बदलकर अंडमान सेलुलर जेल में जीवन भर के निर्वासन में भेज दिया गया।

एक 19 साल का नौजवान जब जज ने उनसे पूछा कि फांसी दी जाये या उम्र कैद? तो सराभा का होसला देखिये उस महावीर युवक का जवाब था कि मैं उम्र कैद के बजाय फांसी लेना पसंद करूंगा ताकि फिर से जन्म लेकर भारत माता की आजादी के लिए लड़ सकूँ।

इस पर जज ने कहा, अगर तुम लड़की बनकर जन्में फिर ?

तब सराभा का जवाब था कि मैं दस सराभा पैदा करूंगी ताकि अंग्रेजी शासन की नींव उखड़ जाये। न्यायाधीश ने अपनी सजा सुनाते हुए उन्हें सभी विद्रोहियों में सबसे खतरनाक बताते हुए कहा चूंकि उन्हें अपने किए गये अपराध पर बेहद अभिमान है, इसलिए वह किसी भी तरह की दया का पात्र नहीं हैं और उन्हें फांसी की सजा दी जानी चाहिए।

घर के अकेले चिराग से दादाजी मिलने लाहौर जेल आए। उन्होंने कहा, "करतार सिंह, हमें अभी भी विश्वास नहीं होता कि देश को तुम्हारी कुर्बानी से फायदा होगा, तुम अपनी जिंदगी क्यूं बर्बाद कर रहे हो?" अपने जवाब में करतार सिंह ने अपने दादाजी को कुछ रिश्तेदारों की याद दिलाई जो हैजा, प्लेग अथवा अन्यं बीमारियों से मर गये थे। और पूछा तो क्या आप चाहते हैं कि आपका पोता एक ऐसी कष्टकारक बीमारी से मरे? क्या यह मौत उससे हजार गुना बेहतर नहीं है?

16 नवम्बर, 1915 को करतार सिंह होठों पर मुस्कान लिए, आंखों में चमक के साथ अपना लिखा हुआ देशभक्ति का गीत गाते हुए चले।

यहीं पाओगे महशर में,
जबां मेरी बयाँ मेरा ।

मैं बन्दा हिन्द वालों का हूँ,
है हिन्दोस्तां मेरा ।

मैं हिन्दी, ठेठ हिन्दी,
जात हिन्दी, नाम हिन्दी है ।

यही मजहब यही फिरका,
यही है खानदां मेरा ।

सरदार करतार सिंह सराभा 19 साल की उम्र में फांसी पर झूल गये थे। गदर पार्टी या आंदोलन कामयाब तो ना हो सका, लेकिन किसे पता था कि सरदार करतार सिंह सराभा, भगत सिंह के प्रेरणास्त्रोत बनकर इसी लाहौर की जेल में 23 मार्च 1931 को दुबारा क्रांति की लहर पैदा कर जाएंगे। आर्य समाज हमेशा अपने इस महानायक, अमर शहीद करतार सिंह सराभा की स्मृति को सँजो कर रखेगा । सादर शत-शत नमन। ❑❑

सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें ।

–महर्षि दयानन्द

वेदों में दी गई तीन अग्नियां–३

–उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर (मो०–९८४५०५८३१०)

पिछले दो महीनों से हम तीन प्रकार की अग्नियों या ऊर्जाओं को देख रहे हैं । तीन अग्नियों से कर्मकाण्ड में एक अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है । इस विषय को भी हम यहां देख लेते हैं। साथ-ही-साथ पिछले लेखों में दिए तथ्यों के कुछ और प्रमाण भी मैं यहां संलग्न कर रही हूं।

तीन अग्नियों के अर्थ का एक और प्रमाण–

जबकि वेदों में तीन से भिन्न ज्योतियों/अग्नियों की संख्या मिलती है, जैसे कि ४, ५, ७, आदि, तथापि तीन संख्या को बहुत अधिक बार कहा गया है । पहले लेख में हमने यजुर्वेद का यह प्रमाण देखा था–

त्रीणि ज्योतीँषि सचते स षोडशी ॥ यजुर्वेदः ३२।५॥

जहां तीन ज्योतियां कही गई थीं । उन्हें अग्नि, विद्युत् व द्यु मानने में हमने मुख्य रूप से निरुक्त व महर्षि दयानन्द की व्याख्याओं का आश्रय लिया था । अब हम सामवेद से इनका प्रमाण प्रदर्शित करते हैं–

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।
सूर्योज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥सामवेदः १८३१॥

अर्थात् अग्नि ज्योति है और ज्योति ही अग्नि, व इसी प्रकार ज्योति से इन्द्र व सूर्य की एकात्मता है । इस प्रकार 'ज्योतिः' पद के अर्थ मन्त्र पूर्णतया स्पष्ट करता है– इस पद से पृथिवीस्थ ऊर्जा अग्नि, आकाशस्थ ऊर्जा विद्युत् व द्युलोकीय ऊर्जावान् सूर्य व उसके जैसे अन्य तारागणों को समझना चाहिए । ऐसे ही वैदिक प्रमाणों से महर्षि दयानन्द सरस्वती ने **'त्रीणि ज्योतीँषि'** का पूर्वोक्त तात्पर्य ग्रहण किया था ।

कर्मकाण्ड व गृहस्थ जीवन में तीन अग्नियां–

वेदों में गृहस्थियों के लिए तीन और अग्नियां बताई गई हैं । वे इस प्रकार हैं–

यो अतिथिनां स आह्वनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्नि ॥
अथर्ववेदः ९।६।३०॥

अर्थात् जो अतिथियों की (के लिए) है, वह आह्वनीय अग्नि होती है; जो गृह में (प्रदीप्त) है, वह गार्हपत्य और जिसमें पकाया जाता है, वह दक्षिणाग्नि कहलाती है ।

'अतिथि' से यहां यज्ञ देवताओं का ग्रहण है । इस मन्त्र से प्रेरित, कल्पसूत्रों, ब्राह्मणों, उपनिषदों, आदि, में इन अग्नियों का अधिक विवरण प्राप्त होता है । इन सब सूत्रों से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में गृह में तीन अग्नियों का विधान था, जिनमें प्रमुख थी गार्हपत्य । गृहपति से निष्पन्न यह शब्द, गृहस्थ के लिए अनिवार्यता सूचित करता है । विवाह के यज्ञ से इस अग्नि को नव-विवाहितों के नए घर में लाया जाता था, और फिर वहां निरन्तर प्रदीप्त रखा जाता था । गृह के विभिन्न कार्यों

के लिए इसी अग्नि से ज्योति लेकर जलाया जाता था । सम्भवतः, यह इसलिए था कि पूर्वकाल में जब दियासलाई नहीं थी, तो आग को अरणियों से उत्पन्न किया जाता था, और यह कार्य श्रमसाध्य व कालसाध्य था; अग्नि को जलाए रखना उन दिनों में अधिक सरल था ! सो, पकाने के कार्य के लिए, गार्हपत्य से लाकर जो अग्नि जलाई जाती थी, उसे दक्षिणाग्नि कहते थे । गृह का पाककार्य तो इसमें होता ही था, परन्तु विशेषकर यज्ञ के स्थालीपाक आदि व ऋत्विजों के लिए भोजन आदि के लिए यह प्रयुक्त होती थी । इस दक्षिणा = दान के कारण उसका यह नाम है । गार्हपत्य से ही, अग्निहोत्र के लिए अग्नि लाई जाती थी, जिस यज्ञाग्नि को आह्वनीय कहा जाता था । यज्ञ में प्राकृतिक देवों का आह्वान किया जाता है, इसलिए उसका यह नाम है ।

प्रश्नोपनिषद् में प्राणों को समझाने के लिए इन अग्नियों की उपमा दी गई है–

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति । गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्यात् प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥ प्रश्नोपनिषत् ४।३॥

अर्थात् प्राण-अग्नियां ही इस शरीररूपी नगर में (सर्वदा) जागती रहती हैं । यह अपान गार्हपत्य है (जो वायु के अन्दर खींचे जाने से मुख्य जीवनदायक प्राण है – जो वह रुक जाए, तो शरीर मृत हो जाए; इसलिए उसका निरन्तर चलना आवश्यक है, जिस प्रकार गार्हपत्याग्नि गृह में निरन्तर जलती है)। व्यान अन्वाहार्यपचन अग्नि है जो कि गार्हपत्य अग्नि से लाई जाती है (अन्वाहार्यपचन दक्षिणाग्नि का पर्याय है । शब्द का अर्थ है – जो पाक क्रिया के लिए, गार्हपत्याग्नि के जलते रहते, उससे लाई जाए। इस पद से अग्नि का कर्म पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है । व्यान, शरीर में जहां-जहां ऊर्जा की आवश्यकता होती है, वहां उपस्थित होकर उसे प्राप्त कराता है, जिस प्रकार अन्वाहार्यपचन अग्नि को आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाया जाता है) । इस प्रणयन = लाए जाने के कारण आहवनीय अग्नि रूप प्राण है (फेफड़े में ली गई अपान वायु से आवश्यक तत्त्व, औक्सीजन, को निकालकर, व अनावश्यक तत्त्व, कार्बन डाइऔक्साइड, को उसमें फेंककर, प्राणवायु उत्पन्न होती है । जो अपान न हो, तो प्राण हो ही नहीं सकता । इस प्रकार प्राण भी 'गार्हपत्य' अपान से ही निकलता है, जिस कारण से उसे प्राण कहा जाता है)। इस प्रकार, बड़ी सुन्दरता से प्रश्नोपनिषद् प्राण वायुओं को समझाता है ।

शतपथ ब्राह्मण का एक प्रकरण इन दोनों धारणाओं को जोड़ता है, और उसके अन्य तथ्य भी रोचक हैं, इसलिए मैं पूरा प्रकरण दे रही हूं–

प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत् । एक एव सोऽकामयत स्यां प्रजायेयेति । सोऽश्राम्यत् । स तपोऽतप्यत । तस्माच्छ्रान्तात् तेपानात् त्रयो लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः ॥१॥

स इमांस्त्रींलोकानभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतीँष्यजायन्ताग्निर्योऽयं पवते सूर्यः ॥२॥

स इमानि त्रीणि ज्योतीँष्यभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रायो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥३॥

स इमांस्त्रीन् वेदानभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदाद् भुव इति यजुर्वेदात् स्वरिति सामवेदात् । तदृग्वेदेनैव होत्रमकुर्वत यजुर्वेदेनाध्वर्यवँ सामवेदेनोद्गीथं यदेव त्रय्यै विद्यायै शुक्रं तेन ब्रह्मत्वमथोच्चक्राम ॥४॥

ते देवाः प्रजापतिमब्रुवन् यदि न ऋक्तो वा यजुष्टो वा सामतो वा ह्वलेत् केनैनं भिषज्येमेति ॥५॥

स होवाच यदृक्तो भूरिति चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा गार्हपत्ये जुहवथ । यदि यजुष्टो भुव इति चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वाग्नीध्रीये जुहवथान्वाहार्यपचने वा हविर्यज्ञे । यदि सामतः स्वरिति चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वाहवनीये जुहवथ । यद्यु अविज्ञातमसत् सर्वाण्यनुद्रुत्यावहनीये जुहवथ । तदृग्वेदेनैवर्ग्वेदं भिषज्यति यजुर्वेदेन यजुर्वेदं सामवेदेन सामवेदं । स यथा पर्वणा पर्व सन्दधयादेवँ हैव स सन्दधाति । य एताभिर्भिषज्यत्यथ यो हातोऽन्येन भिषज्यति यथा शीर्णेन शीर्णं सन्धित्सेद्यथा वा शीर्णे गरमभिनिदधयादेवं तत् । तस्मादेवंविदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवं विदम् ॥६॥

तदाहुः । यदृचा होत्रं क्रियते यजुषाध्वर्यवं साम्नोद्गीथोऽथ केन ब्रह्मत्वमित्यनया त्रय्या विद्ययेति ह ब्रूयात् ॥ शतपथ ब्राह्मणम् ११।५।८।७॥

अर्थात्–निश्चय से (ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से पूर्व) केवल प्रजापति ही था । उस अकेले ने कामना की कि मैं प्रजा वाला हो जाऊं । (इसके लिए) उसने श्रम व तप किया । उस श्रम व तप से तीन लोक सृजित हुए–पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्यौ ॥१॥

उस (प्रजापति) ने तीन लोकों को तपाया । उन तीनों के तपने से तीन ज्योतियां उत्पन्न हुईं –अग्नि, यह जो बहता है (अर्थात् वायु, जिससे विद्युत् उपलक्षित है) और सूर्य ॥२॥ (यहां हम स्पष्ट रूप से ज्योतियों का अर्थ और उनके लोकों का ग्रहण पाते हैं ।)

उसने इन तीन ज्योतियों को तपाया । उन तीनों के तपने से तीन वेद उत्पन्न हुए–अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और सूर्य से सामवेद ॥३॥

उसने इन तीन वेदों को तपाया । उन तीनों के तपने से तीन शुक्र उत्पन्न हुए (जिनसे संक्षेप में तीन वेदों का ग्रहण हो)–ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः और सामवेद से स्वः । ऋग्वेद से ही होत्र बनाया, यजुर्वेद से अध्वर्यव व सामवेद से उद्गीथ । त्रयी विद्या में जो शुक्र था, उससे ब्रह्मत्व बनाया (यज्ञ के तीन ऋत्विज्–होता, अध्वर्यु व उद्गाता को बनाया, व तीनों वेदों को जानने वाले यज्ञ के ब्रह्मा को बनाया) ॥४॥

उन देवों (ऋत्विजों) ने प्रजापति से कहा, "यदि हमारा यज्ञ ऋक् या यजुष् या साम से न हिले (हमारे वैदिक मन्त्रों के प्रयोग में कुछ कमी रह जाए), तो किससे उसका उपचार करें (कैसे उस दोष की भरपाई करें) ॥५॥

वह (प्रजापति) बोला–यदि ऋक् में कमी हो, तो चार चम्मच घी से, 'भूः' कहते हुए, गार्हपत्य (अग्नि) में होमो । यदि यजुष् में कमी हो, तो चार चम्मच घी से, 'भुवः' कहते हुए, आग्नीध्रीय में होमो, या हविर्यज्ञ करते हुए (हवि भी डालते हुए), अन्वाहार्यपचन (अग्नि) में होमो (ये दोनों नाम दक्षिणाग्नि के पर्याय माने जाते हैं, परन्तु यहां स्पष्ट हो रहा है कि, वास्तव में, आग्नीध्रीय व अन्वाहार्यपचन अग्नियों में भी कुछ भेद था । अन्वाहार्यपचन को हविर्यज्ञ भी कहा गया है क्योंकि, उस पर भोजन पका लेने के बाद, उसमें घृत अथवा मिष्ठान्न की आहुति दी जाती थी) । यदि साम

(शेष पृष्ठ १४ पर)

झाड़-फूंक से इलाज–

कब जागेगा इंडियन मेडिकल एसोसिएशन?

–राजीव चौधरी (मो०–९५४००२९०४४)

एक एम०बी०बी०एस० बनने के लिए लगभग 10–15 लाख से लेकर 60 लाख रुपए तक फीस देनी होती है। भारत में प्रति 1700 मरीज पर एक डॉक्टर उपलब्ध है। ये सरकारी आंकड़ा है। अगर ढंग से देखा जाये तो एक मरीज पर 1700 डॉक्टर हैं। क्योंकि झाड़ फूंक का कारोबार दिन दूना रात चौगुना फल फूल रहा है। किन्तु देश का इंडियन मेडिकल एसोसिएशन इस पर फोकस करने के बजाय सुप्रीम कोर्ट में आयुर्वेद के खिलाफ अर्जी लिए बैठा है। जबकि दूसरी ओर बाबा, बंगाली बाबा ओझा, चंगाई सभाओं में फूंक लगाकर इलाज के दम भर रहे है। और देश का गरीब तबका आस्था और अंधविश्वास में कहीं धर्म, तो कहीं जान या कहीं पैसे और इज्जत तक गंवा रहा है। लाखों रूपये खर्च करके सालों मेडिकल की पढ़ाई करने वाले एक ई०एन०टी० डॉक्टर के लिए सदमा हो सकता है। लेकिन बाबा के लिए धंधा और आम लोगों के लिए भक्ति और आस्था ।

सबसे बड़ी बात ये है कि जिन लोगों को मनोचिकित्सा के अनुसार इलाज की जरूरत है। वो खुद डॉक्टर बने हुए हैं। कोई माता के नाम पर, कोई झाड़-फूंक के नाम पर, कोई स्नेक बाबा बनकर इलाज कर रहा है तो कोई मौलाना बच्चों के खिलौनों से धंधा जमाये बैठा है।

विज्ञान ने बेशक काफी तरक्की कर ली है। ला-इलाज बीमारियों का भी इलाज ढूंढ लिया। लेकिन लोग अभी भी कई बीमारियों के प्रति चमत्कार में ही विश्वास करते हैं। ये अगर सही मायनों में अध्ययन किया जाये तो भारत में अस्पतालों से अधिक इलाज तो मजारों में करने का खेल चल रहा है और करोड़ों रूपये ठगे जा रहे हैं। इसे आप महज एक खबर से समझ सकते हैं कि झाड़-फूंक से शुरुआत कर हकीम इमरान बाबा करने लगा था कैंसर का उपचार, लाखों रुपए ठगे।

नेशनल लाइब्रेरी ऑफ मेडिसिन की एक रिपोर्ट बताती है कि अभी भी देश में 40 प्रतिशत लोग बुरी नजर में विश्वास करते हैं। रिपोर्ट बताती है कि उन मधुमेह रोगियों की हालत ज्यादा खराब मिली जिन्होंने दवा ना लेकर झाड़-फूंक पर विश्वास किया। इसके अलावा रिपोर्ट ने बताया कि अंधविश्वासी मेडिकल इलाज के निर्देशों का ठीक से पालन नहीं करते। यहाँ तक कि मिर्गी के रोगियों ने चिकित्सा निर्देशों का पालन करने के बजाय अपनी बीमारी के इलाज के लिए झाड़-फूंक का इस्तेमाल अधिक किया।

आप सोच रहे होंगे इस सब के पीछे कौन जिम्मेदार है? इन जगहों पर जाने वाले लोग या इन जगहों पर बैठे झाड़ फूंक करने वाले मुल्ला मौलाना बाबा फकीर या चमत्कार की आस दैवीय शक्ति में विश्वास या फिर आस्था?

दरअसल इन सबसे पहले एक चीज जिम्मेदार है और वो है भय-डर, अनहोनी की आशंका, जिसे मनोचिकित्सा की भाषा में ओ०सी०डी० ऑब्सेसिव कम्प्लसिव डिसऑर्डर कहा जाता है। इस रोग में मरीज के मन में कई प्रकार के ख्याल आने शुरू हो जाते हैं। जैसे कि कोई घर का सदस्य बाहर गया हो तो, कहीं उसको कुछ हो न गया

हो, कहीं उसका एक्सीडेंट न हो गया हो। ये मरीज दवा से अधिक चमत्कारों पर विश्वास करने लगते हैं। ये भक्ति भजन अधिक करने लगते हैं। पूजा पाठ पर जोर देने लगते हैं। आस्था और चमत्कारों की बात करने लगते हैं। आमतौर पर देखने पर ये मरीज सामान्य लगेंगे। आपको लगेगा ये धर्मिक या आस्थावान हैं। लेकिन मरीज के अन्दर पनप रहा डर धीरे-धीरे बढ़ता चला जाता है। ऐसे में वो परिवार और आस-पास के लोगों को अनहोनी से डराने लगता है, भूत प्रेत का साया बताने लगता है। ओ॰पी॰डी॰ रोग के शिकार रोगी मेडिकल साइंस को नकार देते हैं और आस-पास बुरी हवा या दैवीय शक्ति तक होने का दावा करने लगते हैं।

बस मजहब का चोला पहने कथित चमत्कारी बंगाली बाबा, बाबा पीर मजार पर बैठे शिकारी इस डर का फायदा उठाते हैं। और फिर खबर बनती है कि- झाड़ फूंक कर बीमारी दूर करने के नाम पर ठग लिए दो लाख 60 हजार रुपये। ठगी की खबर में बीमार रोगी का नाम त्रिलोचन गोप है तो लुटेरे बाबा का नाम है मो॰ सलीम।

इन खबरों का एक दूसरा पहलू समझिये- भारत में मानसिक रोग को स्वीकार नहीं किया जाता। क्योंकि मानसिक रोगी कभी स्वीकार नहीं करता कि वो रोगी है। तो घर परिवार के लोग भी नहीं मानते ऐसी अवस्था में इसे दैवीय प्रकोप, भूत-प्रेत, जादू-टोना का असर मानते हैं। अक्सर ऐसी स्थिति से गुजरने वाले तंत्र-मंत्र के चक्कर में पड़ जाते हैं। टोना टोटका से लेकर कई तरह के अनुष्ठान करते हैं, जबकि ये सीजोफेनिया नाम का एक मानसिक रोग है। लेकिन लोग अक्सर इसका इलाज कराने के बजाय इसे भूत-प्रेत, आत्मा और जादू टोने का असर समझकर झाड़-फूंक के चक्कर में पड़ जाते हैं।

ना केवल पड़ जाते हैं बल्कि कई बार इसका खामियाजा पूरे परिवार को भुगतना पड़ता है। एक जुलाई साल 2018 दिल्ली के बुराड़ी इलाके में एक साथ 11 लोगों ने आत्महत्या की थी। जिसमें मासूम बच्चे तक शामिल थे। पुलिस ने माना कि मौतें भ्रम और मनोविकार से प्रेरित यानि सिर्फ इस कारण 11 लोग मारे गये कि परिवार का एक शख्स मानसिक रोगी था। जो सुबह शाम पूजा पाठ अनहोनी की आशंका डर और आत्माओं के अनुष्ठान में लगा रहता था। अगर समय रहते परिवार उसे किसी अच्छे मनोचिकित्सक के पास ले जाता तो शायद आज पूरा परिवार जिन्दा होता!!

यानि अंधविश्वास शुभ-अशुभ, होनी-अनहोनी या चमत्कार का ये खेल शुरू होता है व्यक्ति के मन से, जो इस डर को अन्य व्यक्तियों में भी ट्रांसफर कर देते हैं। कारण हम अक्सर उन चीजों से डरते हैं जिन्हें हम समझ नहीं पाते या समझना नहीं चाहते। इस कारण गाँव-गली से लेकर पीर मजारों, दरगाहों तक ये इलाज का खेल चल रहा है। कहीं महिलाओं को जंजीर से बांधा जा रहा है तो कहीं गर्म सलाखों से दागा जा रहा है। लोगों की सोच यहाँ तक कुंद हो गई है कि पिछले दिनों महोबा के जिला अस्पताल के इमरजेंसी वार्ड में तांत्रिक दो मरीजों का इलाज करते नजर आये। क्योंकि मरीज डॉक्टरों के इलाज पर भरोसा न करके तांत्रिकों से झाड़-फूंक कराने पर ज्यादा यकीन करते हैं।

इसी साल के 2 मार्च को ने एक बाबा को बॉम्बे हाई कोर्ट ने 6 नाबालिग लड़कियों से रेप के मामले में बंगाली बाबा मेंहदी कासिम जेनुल शेख को आजीवन कारावास की सजा सुनाई। मेहंदी शेख पांच साल से अधिक समय तक 6 नाबालिग हिन्दू बच्चियों समेत एक महिला से रेप करता रहा। ना केवल रेप बल्कि परिवार से एक करोड़ से अधिक की संपत्ति भी हड़प ली। कोर्ट

(शेष पृष्ठ १९ पर)

॥ ओ३म् ॥

छोटी-छोटी पर बड़ी बातें – २

–राजेशार्य आट्टा पानीपत-१३२१२२, (मो॰: ०९९९१२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द ! गुणी व्यक्ति छोटी-छोटी घटनाओं से शिक्षा या प्रेरणा पाकर महानता की सीढी पर चढ़ जाते हैं, पर गुणहीन के लिए बड़ी-बड़ी घटनाएँ भी निरर्थक ही रहती हैं। विपक्ष के समर्थक साधारण से व्यक्तियों द्वारा भी सत्ता पक्ष के अच्छे-बुरे हर कार्य की आलोचना होते हुए देखता हूँ तो मुझे महात्मा आनन्द स्वामी जी का प्रसंग याद आता है–

एक बार कथा-प्रसंग के चलते स्वामी जी किसी गृहस्थी के घर शाम को भोजन के लिए गए। जब वे भोजन कर रहे थे, तो अचानक बिजली चली गई। वह सज्जन लगे सरकार की आलोचना करने–बताइये, यह भी कोई व्यवस्था है ! खाना खाने के समय लाइट भगा देते हैं। बहुत निकम्मे लोगों की सरकार है आदि आदि। स्वामी जी बोले–महाशय जी, पहले दीपक जलाओ। सरकार का गुणगान बाद में कर लेना । अब वे माचिस ढूँढने लगे। नहीं मिली, तो श्रीमती जी को आवाज लगाने लगे। दोनों ने बड़ी मुश्किल से माचिस ढूँढी। तब कहीं जाकर दीपक जला। तब स्वामी जी बोले–"भले आदमी, पहले अपने घर की व्यवस्था तो ठीक कर लो, देश को तो बाद में सुधार लेना।"

हर सामान्य व्यक्ति में वित्तैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणा कम या अधिक मात्रा में होती ही हैं, पर लोकैषणा तो कई बार बड़े-बड़े त्यागियों में भी देखी जाती है। कई वर्ष पूर्व कहीं एक कहानी पढ़ी थी, अभी भी मानस पटल पर उभर कर मुझे सचेत करती रहती है–

चक्रवर्ती सम्राट बनने वाला राजा सुमेरु पर्वत पर जाकर वहाँ अपना नाम लिखा करता था। कहते हैं कि दुष्यन्त-पुत्र भरत जब चक्रवर्ती सम्राट बने, तो वे सुमेरु पर्वत पर अपना नाम लिखने गए। इतनी बड़ी पदवी पाकर अभिमान होना स्वाभाविक था, पर जब सुमेरु पर्वत के द्वार पर खड़े द्वारपाल ने उनसे उनका नाम और आने का प्रयोजन पूछा, तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि द्वारपाल चक्रवर्ती सम्राट भरत को नहीं जानता। खैर, उन्होंने अपना नाम और काम बताया, तो द्वारपाल ने सामान्य भाव से उन्हें रास्ता दे दिया।

जब सम्राट भरत पर्वत पर चढे, तो उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यहाँ तो पहले ही असंख्य चक्रवर्ती सम्राटों के नाम लिखे हुए हैं। इससे उनका चक्रवर्ती सम्राट' होने का अभिमान तो नष्ट हो गया, पर अपना नाम तो लिखना था। सारे पर्वत पर घूमने के बाद भी उन्हें कोई ऐसी जगह नहीं मिली, जहाँ वे अपना नाम लिख सकते।

थक-हार कर चक्रवर्ती सम्राट नीचे आ गए। द्वारपाल ने उन्हें उदास देखकर पूछा–क्या बात सम्राट ! नाम नहीं लिखा ? सम्राट ने कहा–कहाँ लिखूँ, वहाँ तो जगह ही नहीं है ! द्वारपाल बोला–किसी का नाम मिटाकर, उसकी जगह लिख दो।' 'यह सुनकर हैरान हुए सम्राट ने कहा–क्या ऐसा हो सकता है?' द्वारपाल मुस्कराते हुए बोला–हाँ, महाराज ! अब तक यही तो होता आया है। ये सब नाम किसी का नाम मिटाकर लिखे गए हैं।'

यह सुनकर सम्राट भरत को और आश्चर्य हुआ और वे द्वारपाल से बोले–'इस तरह तो कल मेरा भी

नाम मिटाया जा सकता है। द्वारपाल ने कहा- हाँ, सम्राट ! इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह सुनकर चक्रवर्ती सम्राट भरत सुमेरु पर्वत पर अपना नाम लिखे बिना ही लौट गए। उन्हें जीवन की क्षणभंगुरता का अनुभव हो चुका था कि जिस नाम के लिए आदमी जान जोखिम में डालकर अच्छे बुरे काम करता है, वह नाम भी स्थिर नहीं रहता। अब उन्हें यह भी अहसास हो चुका था कि चक्रवर्ती सम्राट पहले भी बहुत हो चुके हैं और आगे भी होंगे, वे एकमात्र नहीं हैं।

आचार्य श्री यशपाल जी (गुरुकुल मटिण्डु) के मुख से लगभग २० वर्ष पूर्व एक कथा सुनी थी। तब यह सामान्य लगी थी, पर आज लगने लगा है कि यह मेरी ही कहानी थी—एक राजा ने अपने राज्य में घोषणा करवाई कि कल वे नगर से कुछ दूर सिंहासन पर बैठेंगे और सुबह सूर्योदय से सूर्यास्त तक जो भी व्यक्ति उनके पास पहुँचेगा; वे उसे मुँह माँगी वस्तु देंगे। राजा के आदेश से उस रास्ते के दोनों ओर विभिन्न तरह की दुकानें सजा दी गईं। खेल-खिलौने, खाने-पीने तथा मनोरंजन आदि के लिए किसी से कोई शुल्क नहीं लेने का भी आदेश दिया।

अगले दिन अपनी दिनचर्या से निवृत्त होकर जब लोग अपने बाल-बच्चों व स्त्रियों के साथ राजा के पास जाने के लिए घरों से निकले, तो उन्हें बाजार की चकाचौंध ने मोह लिया। कहीं बच्चे सर्कस देखने लगे व झूला झूलने लगे। बड़े लोग कुश्ती आदि देखने व खेलने में मस्त हो गए। दोपहर को जी भर कर मनपसंद भोजन किया और सो गए। उठकर राजा के पास जाने की सोची, पर अभी बहुत समय है' कहकर नाच-गाने, फिल्म देखने आदि में मस्त हो गए। उससे निवृत्त हुए, तो देखा कि सूर्य लगभग छिप गया है।

कुछ ने राजा के पास पहुँचने के लिए दौड़ लगानी शुरू की, पर अब तो सूर्य बिल्कुल छिप चुका था। अत: वे भी निराश होकर पछताते हुए अपने घरों को लौट आए। वे हम ही तो हैं, जो मायापति (परमात्मा) को भुलाकर माया (संसार के नये-नये पदार्थों की चमक) में ही उलझे रहते हैं। इसीलिए कवि ने निवेदन किया है—

मेरे आराध्य देवता, मेरा तुम्हें प्रणाम है।
गिरते हुओं को थामना, तेरा सदा से काम है॥

१. बुरा जो ढूंढने चला, मुझ सा बुरा न मिल सका।
अन्तःकरण पुकार कर, देता यही पैगाम है। गिरते....
२. मन में भरी है कालिमा, लगता हूँ पर धर्मात्मा।
तुमसे तो कुछ छुपा नहीं, करणी का ही परिणाम है। गिरते....
३. मेरे पिता मैं किस तरह, तेरे समीप आऊँ मैं।
इन्द्रियों पे न लग सकी, अभी तलक लगाम है। गिरते....
४. प्यारे प्रभु दो प्रेरणा, कुछ तो कमाई कर चलूँ।
जीवन का दिन तो ढल चुका, शुरु अन्धेरी शाम है। गिरते....
५. माया का मोह छोड़कर, मायापति को जो जपे।
मरणोपरान्त पाल वो, पाएगा मोक्ष धाम है। गिरते.... ❑❑

• वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

भारतीय समाज के मुक्तिदाता थे स्वामी श्रद्धानन्द

–प्रस्तुति : रचना शास्त्री (मो०–९३०६७०१४५७)

२३ दिसम्बर १९२६ को देश की राजधनी दिल्ली में एक संन्यासी की हत्या हुई थी। ये हत्या करने वाला था एक धर्मांध व्यक्ति अब्दुल रशीद और संन्यासी थे स्वामी श्रद्धानन्द जी। वो संन्यासी जो स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी थे। जो आर्य समाज वैदिक धर्म के संत थे। जिन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं का प्रसार किया। वे भारत के उन महान राष्ट्रभक्त संन्यासियों में अग्रणी थे, जिन्होंने अपना जीवन स्वाधीनता, स्वराज्य, शिक्षा तथा वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया था।

उनका कहना था कि जिस समाज और देश में शिक्षक स्वयं चरित्रवान नहीं होते उसकी दशा अच्छी हो ही नहीं सकती। वो कहते थे कि हमारे यहाँ टीचर हैं, प्रोफेसर हैं, प्रिंसिपल हैं, उस्ताद हैं, मौलवी हैं पर आचार्य नहीं हैं। आचार्य अर्थात् आचारवान् व्यक्ति की सबसे बड़ी आवश्यकता है। उनका कहना था जिस राष्ट्र के शिक्षक उन्नत होंगे तो उस राष्ट्र का भविष्य स्वयं ही उन्नत होगा। चरित्रवान व्यक्तियों के अभाव में महान से महान व धनवान से धनवान राष्ट्र भी समाप्त हो जाते हैं। जात-पात व ऊंच-नीच के भेदभाव को मिटाकर समग्र समाज के कल्याण के लिए उन्होंने अनेक कार्य किए। प्रबल सामाजिक विरोध के बावजूद अपनी बेटी अमृत कला, बेटे हरिश्चन्द्र व इंद्र का विवाह जात-पात के समस्त बंधनों को तोड़ कर कराया। उनका विचार था कि छुआछूत के कारण इस देश में अनेक जटिलताओं ने जन्म लिया है तथा वैदिक वर्ण व्यवस्था के द्वारा ही इसका अंत कर अछूतोद्धार संभव है। उनका दलितों के प्रति अटूट प्रेम व सेवा भाव अविस्मरणीय है।

अपना सब कुछ बेचकर हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। न केवल स्थापना की बल्कि गुरु और शिष्य के बीच अटूट स्नेह का परिचय भी दिया। गुरुकुल में एक ब्रह्मचारी के रुग्ण होने पर जब उसने उल्टी की इच्छा जताई तब स्वामी जी द्वारा स्वयं की हथेली में उसकी उल्टियों को लेते देख सभी हतप्रभ रह गए। ऐसी सेवा और सहानुभूति और कहाँ मिलेगी? स्वामी श्रद्धानन्द का विचार था कि अज्ञान, स्वार्थ व प्रलोभन के कारण धर्मांतरण कर बिछुड़े स्वजनों की शुद्धि करना देश को मजबूत करने के लिए परम आवश्यक है। इसीलिए, स्वामी जी ने भारतीय हिंदू शुद्धि सभा की स्थापना कर दो लाख से अधिक मलकानों को शुद्ध किया। एक बार शुद्धि सभा के प्रधान को उन्होंने पत्र लिख कर कहा– "अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण कर शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करूं।"

वह निराले वीर थे। उनके बारे में लौह पुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल ने कहा था कि स्वामी श्रद्धानन्द की याद आते ही १९१९ का दृश्य आंखों के आगे आ जाता है। सिपाही फायर करने की तैयारी में हैं। स्वामी जी छाती खोल कर आगे आते हैं और कहते हैं– **"लो! चलाओ गोलियाँ"** इस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं होगा? महात्मा गांधी के अनुसार वह वीर सैनिक थे। वीर सैनिक रोग शैय्या पर नहीं, परंतु रणांगण में मरना पसंद करते हैं। वह वीर के समान जीये तथा वीर के समान मरे। जब एक मतान्ध युवक ने उनसे चर्चा

करने के बहाने छल से उन पर गोली दाग दी थी।

देश की अनेक समस्याओं तथा हिन्दुओं के उद्धार हेतु उनकी एक पुस्तक "हिन्दू संगठन मरणोन्मुख जाति का रक्षक" आज भी हमारा मार्गदर्शन कर रही है। राजनीतिज्ञों के बारे में स्वामी जी का मत था कि भारत को सेवकों की आवश्यकता है लीडरों की नहीं। श्री राम का कार्य इसीलिए सफल हुआ क्योंकि उन्हें हनुमान जैसा सेवक मिला। वह हिन्दी को राष्ट्र भाषा और देवनागरी को राष्ट्रलिपि के रूप में अपनाने के पक्षधार थे। सद्धर्म प्रचार नामक पत्र उन दिनों उर्दू में छपता था। एक दिन अचानक ग्राहकों के पास जब यह पत्र हिंदी में पहुंचा तो सभी दंग रह गए क्योंकि उन दिनों उर्दू का ही चलन था। त्याग व अटूट संकल्प के धनी और वैदिक शिक्षा के पक्षधर स्वामी श्रद्धानन्द ने यह घोषणा कर दी थी कि जब तक गुरुकुल के लिए ३० हजार रुपए इकट्ठे नहीं हो जाते तब तक वह घर में पैर नहीं रखेंगे। इसके बाद उन्होंने भिक्षा की झोली फैलाकर कर न सिर्फ घर-घर घूम ४० हजार रुपये इकट्ठे किए बल्कि वहीं डेरा डाल कर अपना पूरा पुस्तकालय, प्रिंटिंग प्रेस और जालंधार स्थित कोठी भी गुरुकुल पर न्योछावर कर दी उनकी इस दान की शक्ति, देश और धर्म के प्रति प्रेम पर कौन मुग्ध नहीं हो जाता? उस वीर संन्यासी का स्मरण हमारे अन्दर सदैव वीरता और बलिदान के भावों को भरता रहेगा। वो निसंदेह भारतीय समाज मुक्तिदाता थे। ❑❑

(पृष्ठ ८ का शेष) वेदों में दी गई तीन अग्नियां–३

में कमी हो, तो चार चम्मच घी से, 'स्वः' कहते हुए, आह्वनीय में होमो । यदि यह ज्ञात न हो कि किस वेद के प्रयोग में कमी हुई, तो सब (व्याहृतियों) को शीघ्रता से बोलकर आहवनीय में होम करो । इस प्रकार ऋग्वेद से ऋग्वेद का, यजुर्वेद से यजुर्वेद का व सामवेद से सामवेद का उपचार होता है । जैसे जोड़ पर जोड़ (उसी पदार्थ का दूसरा अंश) रखकर, (कटे को) जोड़ा जाता है, वैसे ही उन्हीं (वेदों) से (उनके टूटे भागों) को जोड़ देता है । जो किसी अन्य से जोड़े, तो वह जैसे टूटे से जोड़ा जाए, या विष से जोड़ा जाए, ऐसा हो जाएगा (अर्थात् विनाश हो जाएगा) । इसलिए ऐसे (ऋत्विज्) को (यज्ञ का) ब्रह्मा बनाना चाहिए, जो यह जानता है, दूसरे को नहीं ।।६।।

सो कहते हैं कि ऋग्वेद से होत्र किया जाता है, यजुष् से अध्वर्यव, साम से उद्गीथ । (यदि कोई पूछे–) तो ब्रह्मत्वं किससे हो? तो उत्तर दो कि इन तीनों विद्याओं से (अर्थात् जो इन तीनों वेदों को जाने, वह यज्ञ का ब्रह्मा कहाए) ।

इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण का यह प्रकरण तीन लोकों को तीन ज्योतियों, वेदों, व्याहृतियों व गृह की तीन भौतिक अग्नियों से जोड़ता है । इस सम्बन्ध को और अधिक समझने की आवश्यकता है ।

वैदिक जीवन में अग्नि की बहुत महत्ता थी । आज अग्नि को एक महान प्रारम्भिक आविष्कार माना जाता है । वेदों में अग्नि की इस महत्ता का दर्शन ही पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है । सुव्यवस्था के लिए, गृह की अग्नियों के भी तीन प्रकार निर्धारित किए गए थे । परन्तु भौतिक अग्नि ही नहीं, विद्युत् व सौर ऊर्जा की महानता का भी वेदों ने प्रस्थापन किया, जिससे मनुष्य इनका अपने कार्यों में उपयोग करके लाभ उठाएं । इस प्रकार, पुनः हम वेदों की महानता व वैज्ञानिकता का दिग्दर्शन पाते हैं । ❑❑

ईश्वर साकार है या निराकार ?

–गंगाशरण आर्य (मो०-९८७१६४४१९५)

[गतांक से आगे....]

ऐसी सैंकड़ों युक्तियों द्वारा ईश्वर का निराकार स्वरूप ही सिद्ध होता है साकार कदापि नहीं। उसी ईश्वर का वेदों में प्रमुख और निज नाम "ओ३म्" है और बाकी अन्य नाम गुणों के अनुसार हैं। जैसे शिव, रूद्र, मित्र, प्रजापति, वरूण, इन्द्र, सूर्य, वैश्वानर आदि। कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर साकार भी है और निराकार भी। ये युक्ति मिथ्या है। क्योंकि एक ही पदार्थ में दो विपरीत गुण नहीं हो सकते अर्थात् किसी वस्तु में एक ही गुण का एक ही समय में भाव तथा अभाव दोनों होना असंभव है। अत: ईश्वर को या तो साकार मानना पड़ेगा या निराकार मानना पड़ेगा। दोनों गुण एक साथ संभव नहीं हैं।

ईश्वर को साकार मानने में तीन प्रमुख दोष हैं। प्रथम यदि ईश्वर मनुष्य की भाँति शरीरधारी मान लिया जाए तो उसे एकदेशीय या किसी स्थान विशेष पर रहने वाला मानना होगा। जब ईश्वर एकदेशीय होगा तब वह सर्वव्यापक और सर्वज्ञ न रहता तथा ऐसी स्थिति में उसकी शक्ति भी सीमित रहती। दूसरा दोष:–ईश्वर को साकार या शरीर धारी मानने से हममें विचार शून्यता का दोष लगता है। मूढ़मति कहलाये जाएंगे। जब ईश्वर निराकार और सर्वव्यापक ही है तो उसे साकार मानना बेवकूफी है। ईश्वर को साकार मानने में जो तीसरा दोष है वो है इससे मनुष्य जाति में ईश्वर के भिन्न-भिन्न आकार होने से उनके अनुयायियों में मतभेद और अनेकता बढ़ती है। इसी को मजहबी दुश्मनी कहते हैं। इस प्रकार आपसी फूट होने से वैर बढ़ता है।

सत्य सदैव सबको समान रूप से मान्य और एक ही होता है जिससे एकता की संभावना बनी रहती है। जबकि असत्य अनेकता एवं मतभेद को उत्पन्न करता है। यदि किसी बालक से कोई पूछे कि सत्य-सत्य बताओ कि दो और दो मिलकर कितनी संख्या हो जाती है तो वह उत्तर में चार ही बताएगा किन्तु असत्य उत्तर देने पर छः, आठ, नौ आदि बहुत सी संख्याएँ हो सकती हैं। लोक-व्यवहार में भी ईश्वर की साकार कल्पना कर लेने के कारण ही ईश्वर की दो भुजी, चतुर्भुजी तथा अष्टभुजी आदि अनेक प्रकार की मूर्तियाँ बना ली गई हैं। इस झूठी कल्पना के परिणाम स्वरूप ही मनुष्यों में अनेक प्रकार के सम्प्रदाय बन गए हैं।

ईश्वर को बहुत से बुद्धिमान् लोग मानते हैं कि यद्यपि ईश्वर निराकार है, किन्तु वह कभी-कभी भक्तों का कष्ट निवारण करने के लिए शरीर भी धारण करता है, ऐसा भी मानते है। लेकिन अगर आप विवेकपूर्वक बुद्धि से चिंतन करेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि ईश्वर जब भी शरीर धारण करेगा उस समय वह एकदेशीय हो जाएगा। ऐसी स्थिति में वह सर्वव्यापक नहीं रह सकता। साकार हो जाने पर ईश्वर जिस स्थान पर रहेगा उसके अतिरिक्त अन्य शेष स्थान ईश्वर की सत्ता से शून्य अर्थात् रहित हो जाएंगे और ईश्वर की सत्ता से रहित कहीं कोई सृष्टि हो ऐसा असंभव है। इसलिए "ईश्वर कभी भी साकार नहीं होता है।" और रही बात ईश्वर के द्वारा भक्तों के कष्ट निवारण के लिए साकार रूप धारण करने की तो इसके लिए अकबर-बीरबल का एक उदाहरण देकर इस पक्ष की पुष्टि की जाती है। उदाहरण इस प्रकार है:– एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल से पूछा कि राक्षसों को मारने के लिए ईश्वर स्वयं

क्यों आ जाता है? दूसरे दिन बीरबल ने अकबर के पुत्र का पुतला बनवाकर जल में सेवक से फेंकवा दिया। बादशाह पुत्र को बचाने के लिए झट से जल में कूद पड़े। बीरबल ने कहा–जहाँपनाह! जिस प्रकार अपने पुत्र की रक्षा हेतु आप स्वयं ही जल में कूद पड़े, उसी प्रकार भक्तों की रक्षा के लिए भगवान स्वयं ही धरती पर आ जाते हैं। इस दृष्टान्त से सिर्फ एक ही पुष्टि होती है कि अकबर सर्वव्यापक नहीं था, एकदेशीय था इसलिए अपने पुत्र की रक्षा के लिए स्वयं जल में उतर गया था। यदि वह सर्वव्यापक होता तो जल में पहले से ही विद्यमान होने के कारण उसे अपने पुत्र की रक्षा के लिए जल में दोबारा कूदना ना पड़ता। अत: सीमित शक्ति वाले एकदेशीय प्राणी अकबर का दृष्टान्त असीम शक्ति सम्पन्न, सर्वव्यापक ईश्वर पर लागू नहीं होता।

ईश्वर के सम्बन्ध में यह प्रश्न ही निरर्थक है कि ईश्वर क्यों आता है? जब वह सर्वत्र विद्यमान ही है तो उसके आने या जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। जो लोग अज्ञानवश ईश्वर को किसी काल्पनिक स्थान विशेष जैसे:– बैकुण्ठ धम, क्षीर सागर आदि का निवासी मानते हैं, ईश्वर का आना–जाना अथवा अवतार लेना उन्हीं लोगों की मानसिक कल्पना मात्र है जबकि ये नियम है कि "वस्तु स्थान घेरती है, ईश्वर स्थान नहीं घेरता"।

मेरा पाठकवृन्द से अनुरोध है कि धैर्यपूर्वक विचार करो कि क्या ईश्वर इतना निर्बल है कि उसे दुष्टों का संहार करने के लिए शरीर का सहारा लेकर जन्म–मरण के बंधन में बंधना पड़े? इस विषय में चिंतन व मनन करने पर आपको उत्तर स्वयं ही मिल जाएगा। इसी प्रकार एक और ध ारणा लोगों के मन में बनी रहती है कि वह परमात्मा 'सगुण' भी है और 'निर्गुण' भी है। इसमें कोई दो राय नहीं कि परमात्मा 'सगुण' और 'निर्गुण' दोनों है लेकिन पौराणिकों के अनुसार 'सगुण' का अर्थ साकार और 'निर्गुण' का अर्थ निराकार है जो उचित नहीं है। यह अर्थ इसलिए सही नहीं है क्योंकि गुण और आकार शब्द पर्यायवाची नहीं हैं। गुण शब्द से अनेक विशेषणों का बोध होता है, जबकि आकार शब्द एक गुण "आकृति" को ही व्यक्त करता है। बहुत से लोगों का कहना है कि यदि परमात्मा एक ही है तो वह 'सगुण' और 'निर्गुण' दोनों कैसे हो सकता है? ये दोनों शब्द तो परस्पर विलोम (उल्टे) प्रतीत होते हैं इसलिए ऐसी शंका उत्पन्न होती है। लेकिन ऐसा है नहीं, इनके अर्थ पर विचार करने पर पता चलता है कि ये दोनों विपरीतार्थक शब्द नहीं हैं। संसार में जितने भी विशेषण होते हैं, वे 'गुण' कहे जाते हैं। किसी वस्तु में कुछ गुणों के रहने अथवा न रहने से ही उस वस्तु की अन्य वस्तुओं से अलग पहचान बनती है।

"यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः" अर्थात् कुछ गुण विशेष से रहित होने से वह ईश्वर 'निर्गुण' है जैसे कि वह ईश्वर राग, द्वेष, क्लेश, अविद्या आदि गुण विशेषों से रहित है। इसी प्रकार वह ईश्वर रूप, रस, स्पर्श तथा गन्ध आदि जड़ प्रकृति के गुण विशेषों से रहित भी है। इस प्रकार कुछ गुण विशेषों के न रहने से 'निर्गुण' कहलाता है और दूसरे अन्य अनेक गुण विशेषों से युक्त होने के कारण परमात्मा 'सगुण' भी है जैसे कि असीम शक्ति, अनन्त ज्ञान और आनन्द आदि गुण विशेष उस ईश्वर के हैं इसलिए वह 'सगुण' भी है। इस प्रकार 'सगुण' का अर्थ विशेष गुणों से युक्त या सहित और 'निर्गुण' का अर्थ विशेष गुणों से रहित है। 'सगुण' और 'निर्गुण' के विषय में पौराणिकों द्वारा किया गया अर्थ साकार और निराकार कदापि नहीं हो सकता।

'सगुण' और 'निर्गुण' का यह साकार और निराकार अर्थ लेने के कारण ही जनमानस में

धन-लोलुप पोंगा-पण्डितों द्वारा ईश्वर के साकार और निराकार होने की धारणा अंकित कर दी गई है। यह धारणा अवतारवादी धारणा के कारण आई है जिस गलत धारणा से निकालने का एक छोटा सा प्रयास मैं कर रहा हूँ। मेरा किसी पौराणिक पण्डित भाई से कोई द्वेष-भाव नहीं है ना ही मैं किन्ही भक्तों की भावनाओं को आहत करने का प्रयास करना चाहता हूँ, मैं तो केवल जो सच है वही प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। पहली बात ईश्वर कभी अवतार लेता ही नहीं क्योंकि वह सर्वव्यापक है, कण-कण में पहले ही से विद्यमान है तो उसे अवतार लेने की आवश्यकता भी नहीं है। अवतार तो आत्मा का होता रहता है इसी को ही पुनर्जन्म की मान्यता कहते हैं। और ईश्वर का साकार व निराकार होना केवल एक भ्रान्ति मात्र है। ये भी पेटार्थी वेदज्ञान से अनभिज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा फैलाया गया षड्यन्त्र है कि राम-कृष्ण आदि ईश्वर के साकार रूप है और महात्मा शिव का लिंगरूप निराकार ईश्वर का प्रतीक है। यहाँ समझने की बात यह है कि सर्वोच्च शक्ति सदैव एक ही होती है। जैसे कॉलेज का एक ही प्रिंसीपल, विश्वविद्यालय का एक ही वाईसचांसलर तथा प्रत्येक राष्ट्र का एक ही मुख्य राष्ट्राध्यक्ष होता है उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का एक ही नियंता, ब्रह्म या 'ईश्वर' है और वह सर्वव्यापक है।

'ईश्वर' के भिन्न-भिन्न गुणों के आधार पर अनेक नाम हैं। राम-कृष्णादि भी उसी अनेक नाम वाले एक ही 'ईश्वर' के उपासक थे न कि स्वयं ईश्वर या ईश्वर के अवतार थे। वे अपने सदाचार व विद्या आदि गुणों से युक्त होने के कारण 'सगुण' थे। संसार के सभी प्राणी व वस्तुएं भी कुछ गुणों के (गुण सहित) होने से 'सगुण' और कुछ गुणों से (गुण रहित) होने से 'निर्गुण' है। अतः प्रश्न उठता है कि क्या संसार की सभी वस्तुएं व प्राणी ईश्वर के अवतार है? नहीं ईश्वर का कभी अवतार नहीं होता, केवल जीवात्मा ही एक शरीर से दूसरे शरीर में आती-जाती है। इस प्रकार राम और कृष्ण पूर्व जन्म के उत्तम संस्कारों से युक्त पवित्रा जीवात्मा के अवतार थे, 'ईश्वर' नहीं अपितु देवता थे। विद्वान, सदाचारी तथा परोपकार करने वालों को संसार में देवता ही कहा जाता है। और उनके चित्रों को पूजने की बजाय उनके चरित्र से प्रेरणा लेनी चाहिए अर्थात् उनके अच्छे गुणों को अपने जीवन में धारण करना ही चाहिए। उन्हें 'ईश्वर' मानकर इनकी पूजा करना निरर्थक है। संसार में ईश्वर की स्तुति अर्थात् उसके गुणों का चिन्तन दो प्रकार से किया जाता है। एक होती है 'सगुण' स्तुति और दूसरी है 'निर्गुण' स्तुति। 'सगुण' स्तुति में परमात्मा के अन्दर जो-जो गुण विद्यमान है, उनका स्मरण किया जाता है जैसे कि ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान और सर्वाधार है इन गुणों का चिन्तन करना ईश्वर की 'सगुण' स्तुति कहलाती है। इसी प्रकार 'निर्गुण' स्तुति में वह अजर, अमर, अभव, तथा निष्पाप है उसके इन गुणों का चिन्तन करना ही ईश्वर की 'निर्गुण' स्तुति कहलाती है। और परमात्मा के गुणों का चिन्तन करते हुए उन्हें अपने व्यवहार में धारण करना ही सच्ची ईश्वर भक्ति है। ❑❑

- **गौ आदि पशुओं की रक्षा से संसार का बड़ा उपकार है ।**
- **गौ आदि पशुओं की रक्षा सभी प्राणियों के सुख के लिये आवश्यक है।**
- **गौ आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है।**

(महर्षि दयानन्द द्वारा रचित-गो करुणानिधि पुस्तक से)

ईद !

–तसलीमा नसरीन

ईद की सुबह स्नानघर में घर के सभी लोगों ने बारी-बारी से कोस्को साबुन लगाकर ठण्डे पानी से गुसल किया। मुझे नए कपड़े जूते पहनाए गए, लाल रिबन से बाल संवारे गए, मेरे बदन पर इत्र लगाकर कान में इत्र का फाहा ठूंस दिया गया। घर के लड़कों ने कुर्ता-पाजामा पहनकर सिर पर टोपी लगाई। उनके कानों में भी इत्र के फाहे थे । पूरा घर इत्र से महकने लगा।

घर पुरुषों के साथ मैं भी ईद के मैदान की ओर चल पड़ी। ओह कितना विशाल मैदान था। घास पर बिस्तर के बड़े-बड़े चादर बिछाकर पिताजी बड़े भैया, छोटे भैया और बड़े मामा के अलावा मेरे सभी मामा वहाँ नमाज पढ़ने के लिए खड़े हो गए। पूरा मैदान लोगों से भरा हुआ था। नमाज शुरू होने के बाद जब सभी झुक गए, तब मै मुग्ध होकर खड़ी खड़ी वहाँ का दृश्य देखने लगी। बहुत कुछ हमारे स्कूल की असेम्बली के पी॰टी॰ करने जैसा था जब हम झुककर अपने पैरों की अंगुलियां छूते थे, तब वहाँ भी कुछ ऐसा ही लगता होगा । नमाज खत्म होने के बाद पिताजी अपने परिचितों से गले मिलने लगे। गले मिलने का नियम सिर्फ लड़कों में ही था । घर लौटकर मैंने अपनी मां से कहा, "आओ मां, हम भी गले मिलकर ईद मुबारक कहें।"

मां ने सिर हिलाकर कहा, "लड़कियां गले नहीं मिलतीं ।"

"क्यों नहीं मिलतीं" पूछने पर वे बोलीं, "रिवाज नहीं है ।"

मेरे मन में सवाल उठा, "रिवाज क्यों नहीं है ?"

खुले मैदान में कुर्बानी की तैयारियां होने लगीं। तीन दिन पहले खरीदा गया काला सांड कड़ई पेड़ से बंधा था । उसकी काली आँखों से पानी बह रहा था। यह देखकर मेरे दिल में हूक उठी कि एक जीवित प्राणी अभी पागुर कर रहा है, पूंछ हिला रहा है जो थोड़ी देर बाद गोश्त के रूप में बदलकर बाल्टियों में भर जाएगा। मस्जिद के इमाम मैदान में बैठकर छुरे की धार तेज कर रहे थे । हाशिम मामा कहीं से बांस ले आए। पिताजी ने आंगन में चटाई बिछा दी, जहाँ बैठकर गोश्त काटा जानेवाला था । छुरे पर धार चढ़ाकर इमाम ने आवाज दी ।

हाशिम मामा, पिताजी और मुहल्ले के कुछ लोगों ने सांड को रस्सी से बांधकर बांस से लंगी लगाकर उसे जमीन पर गिरा दिया । सांड 'हम्बा' कहकर रो रहा था। मां और खाला वगैरह कुर्बानी देखने के लिए खिड़की पर खड़ी हो गई । सभी की आंखों में बेपनाह खुशी थी।

लुंगी पहने हुए बड़े मामा ने, जिन्होंने इत्र वगैरह नहीं लगाया था, मैदान के एक कोने पर खड़े होकर कहा, "ये लोग इस तरह निर्दयतापूर्वक एक बेजुबान जीव की हत्या कर रहे हैं। जिसे लोग कितनी खुशी से देख रहे हैं। वो सोचते हैं कि अल्लाह भी इससे खुश होते होंगे। दरअसल किसी में करुणा नाम की कोई चीज नहीं है।" बड़े मामा से कुर्बानी का वह वीभत्स दृश्य देखते नहीं बना। वे चले गए। मगर मैं खड़ी रही।

सांड हाथ-पैर पटक कर आर्तनाद कर रहा था। वह सात-सात तगड़े लोगों को झटक कर खड़ा हो गया। उसे फिर से लंगी मारकर गिराया गया। इस बार उसे गिराने के साथ ही इमाम ने धारदार छुरे से अल्लाह हो अकबर कहते हुए

उसके गले को रेत दिया। खून की पिचकारी फूट पड़ी। गला आधा कट जाने के बाद भी सांड हाथ-पैर पटककर चीखता रहा।

मेरे सीने में चुनचुनाहट होने लगी, मैं एक प्रकार का दर्द महसूस करने लगी। बस मेरा इतना ही कर्तव्य था कि मैं खड़ी होकर कुर्बानी देख लूं। मां ने यही कहा था, इसे वे हर ईद की सुबह कुर्बानी के वक्त कहती थीं। इमाम सांड की खाल उतार रहे थे तब भी उसकी आंखों में आंसू भरे हुए थे। शराफ मामा और फेलू मामा उस सांड के पास से हटना ही नहीं चाहते थे। मैं मन्नू मियां की दुकान पर बांसुरी व गुब्बारे खरीदने चली गई। उस सांड के गोश्त के सात हिस्से हुए। तीन हिस्सा नानी के घरवालों का, तीन हिस्सा हम लोगों का और एक हिस्सा भिखारियों व पड़ोसियों में बांट दिया गया।

.... बड़े मामा लुंगी और एक पुरानी शर्ट पहनकर पूरे मुहल्ले का चक्कर लगाने के बाद कहते, "पूरा मुहल्ला खून से भर गया है। कितनी गौएं कटी, इसका हिसाब नहीं। ये पशुधन किसानों को ही दे दिए जाते तो उनके काम आ सकते थे। कितने ही किसानों के पास गाय नहीं है। पता नहीं, आदमी इतना राक्षस क्यों है? समूची गाएँ काटकर एक परिवार गोश्त खाएगा, उधर कितने लोगों को भात तक नहीं मिलता।"

बड़े मामा को गुस्ल करके ईद के कपड़े पहनने के लिए तकादा देने का कोई लाभ नहीं था। आखिरकार हारकर नानी बोली, "तूने ईद तो किया नहीं तो क्या इस वक्त खाएगा भी नहीं? चल खाना खा ले।" "खाऊंगा क्यों नहीं, मुझे आप खाना दीजिए। गोश्त के अलावा अगर कुछ और हो तो दीजिए।" बड़े मामा गहरी सांस लेकर बोले। नानी की आंखों में आंसू थे। बड़े मामा ईद की कुर्बानी का गोश्त नहीं खाएंगे, इसे वे कैसे सह सकती थीं। नानी ने आंचल से आंखें पोंछते हुए प्रण किया कि वे भी गोश्त नहीं छुएंगी। अपने बेटे को बिना खिलाए माताएं भला खुद कैसे खा सकती हैं। बड़े मामा के गोश्त न खाने की बात पूरे घर को मालूम हो गई। इसे लेकर बड़ों में एक प्रकार की उलझन खड़ी हो गई। ❑❑

(साभार : तसलीमा नसरीन आत्मकथा भाग-एक, मेरे बचपन के दिन)

(पृष्ठ १० का शेष) **झाड़-फूंक से इलाज-कब जागेगा इंडियन मेडिकल एसोसिएशन**

ने अपने फैसले में साफ कहा कि तथाकथित तांत्रिक या बाबा न केवल लोगों से पैसे ऐंठकर उनकी कमजोरियों का फायदा उठाते हैं, बल्कि कई बार समाधान देने की आड़ में पीड़ितों का यौन उत्पीड़न भी करते है।

ये सब कुछ होता है दैवीय डर, उसका इलाज और चमत्कार की आड़ में। लेकिन विज्ञान और अंधविश्वास की मुठभेड़ अक्सर प्रतिरोध और क्रोध को जन्म देती है। देवीय डरपोक पीड़ित मानसिक रूप से बीमार रोगी या डर चमत्कार अंधविश्वास के धंधे से समाज को लूटने वाले लोग सही राह दिखाने वाले को अधर्मी नास्तिक कहकर खारिज कर देते हैं। ताकि डर का धंधा कायम रहे और लोग इनके जाल में फंसते रहे। जबकि हमारे वेद आयुर्वेद में किसी भी बीमारी का चमत्कार से इलाज होना नहीं बताया गया है। किन्तु चमत्कारी बाबाओं, मजारों दरगाहों का जाल ऐसा फैल रहा है कि आगे आने वाले दिनों में अस्तपाल और डॉक्टर कम ये बाबा ही बाबा दिखाई देंगे और इंडियन मेडिकल एसोसिएशन आयुर्वेद के खिलाफ कोर्ट में बैठी मिलेगी। इस विषय में दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से जारी की गई किताब अंधविश्वास जरुर पढ़ें और अपने सगे सम्बन्धियों को जागरूक करें। ❑❑

नारी-गौरव : एक न्यायपूर्ण निष्कर्ष

-पं॰ रामनिवास 'गुणग्राहक' सम्पर्क-(९०७९०३९०८८)

समझदारीपूर्ण सोच तो यह है कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपने गुण, कर्म, स्वभाव और योग्यता के अनुसार ही अपनी, पारिवारिक व सामाजिक स्थिति पाकर सन्तुष्ट रहे! इससे कम अगर किसी को मिलता है, या कोई अधिक पाने की लालसा रखता है तो ये दोनों स्थितियाँ हमारे पारिवारिक व सामाजिक ढाँचे के लिए हानिकारक हैं। हम अपने पुराने साहित्य को उठाकर देखते हैं तो पता चलता है कि हमारे तत्ववेत्ता ऋषि-मुनियों ने हमारी पारिवारिक व सामाजिक संरचना का ताना-बाना बहुत ही विवेकपूर्ण ढंग से तैयार किया है। पारिवारिक संरचना की बात करें तो माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहिन आदि सबके परस्पर कर्तव्यों का बड़े मानवीय और मनो-वैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया है। सामाजिक संरचना की बात करें तो मर्यादित जीवन जीने में विश्वास रखने वाले लोगों को हमारे प्राचीन ऋषियों ने वेद के अनुसार चार भागों में बाँटा है और इसे वर्ण व्यवस्था नाम दिया है।

वर्ण व्यवस्था के नाम से टेढ़ी भृकुटि करने वाले महानुभावों को बता दें कि वर्ण व्यवस्था केवल योग्यता के अनुसार कार्य-विभाजन है। वर्ण व्यवस्था में आजकल के जातिवाद और ऊँच नीच, छुआछूत जैसे भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं है ! वर्णव्यवस्था को लाञ्छित करने वालों को बता दें कि वैदिक वर्णव्यवस्था ब्राह्मण के घर में भोजन बनाने का काम शूद्र को देती है तथा ब्राह्मण को आदेश देती है कि वह सेवकों (शूद्रों) को भोजन कराने के बाद ही भोजन करे। इससे उत्तम सामाजिक सौहार्द संसार में मिलना सम्भव नहीं।

वर्तमान की विडम्बना यह है कि आज हमारे पारिवारिक और सामाजिक समीकरण बुरी तरह बिखर कर रह गये हैं! साम्प्रदायिक संघर्ष और जातिवादी संकीर्णता से उपजे दलित आन्दोलन के चलते सामाजिक समरसता को नष्ट भ्रष्ट किया जा रहा है तो दूसरी ओर 'जेनरेशन गैप' जैसे और औचित्य शून्य शब्द की आड़ में नई पीढ़ी के सब प्रकार के अनाचार को स्वीकार करने के लिए वातावरण तैयार किया जा रहा है तथा नारीवादी सोच के नाम पर हमारे कुछ प्रगतिशील बुद्धिजीवी कहलाने वाले लोग बबूल के पेड़ को बरगद कहलवाने के लिए कोहराम मचा रहे हैं। सरल पाश्चात्य रंग-ढंग की फैशन और फूहड़ता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानने वाली नारी **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:'** वाली पूज्य दृष्टि की इच्छा रखे तो इससे अधिक बौद्धिक दिवालियापन क्या हो सकता है?

हम जिस युग में जी रहे हैं वह नियमों, सिद्धान्तों, मर्यादाओं और व्यवस्थाओं के घोर दुरुपयोग का युग है। आज का हर मानव अपने उचित कर्तव्यों की ओर से मुँह मोड़कर अनुचित ढंग से अधिकारों को पाने के लिए लड़ने-झगड़ने से लेकर मरने-मारने तक को तैयार दिखता है। आज बहुतायत ऐसे लोगों की है जो बिना कुछ किये सब कुछ पाने या थोड़ा करके अधिक पाने में ही जीवन की सफलता मान बैठे हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि आज की नारी भारतीय नारी के महान सम्मान व पूज्य भाव को केवल नारी होने के कारण ही प्राप्त करना चाहती है। आज की

नारी को यह भली प्रकार जान और मान लेना चाहिए कि भारतीय संस्कृति और साहित्य में नारी को जो गौरव-मान दिया गया है, वह उसके गुण-गौरव और महनीय कर्तव्यों के पालन के लिए दिया गया है। आज की नारी तप-त्याग, सहिष्णुता जैसे अपने स्वाभाविक गुणों को स्वीकार किये बिना केवल मैकॉले की शिक्षा-पद्धति से कुछ पढ़-लिखकर तथा-"हम भारत की नारी हैं, फूल नहीं चिनगारी हैं" जैसे उग्र नारे लगाकर माता सीता, सुमित्रा और पद्मिनी, जीजा बाई जैसा सम्मान पाना चाहें तो यह बबूल बोकर आम पाने जैसी बुद्धि विरुद्ध सोच है। आज की नारी को भूलना नहीं चाहिए कि जो मान-सम्मान माता कौशल्या को मिला वह कैकेयी को नहीं मिला, जो गौरव-गरिमा सीता को प्राप्त है वह सूर्पणखाँ को नहीं। अगर केवल नारी होने के कारण ही मान-सम्मान होता तो एक ही काल में, एक ही इतिहास पुस्तक में यह अन्तर क्यों? सहजता से समझा जा सकता है कि सबको उसके सद्गुणों, सद्विचारों और सत्कर्मों के कारण मान-सम्मान मिलता है। प्रश्न नर या नारी का नहीं है प्रश्न यह है कि हम पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर किसी को कुछ दिये बिना, किसी के लिए अपना कुछ त्यागे बिना सच्चा सम्मान नहीं पा सकते।

जब तथ्यों और तर्कों से यह समझ में आ गया कि प्रत्येक को अपना मान-सम्मान पारिवारिक व सामाजिक स्तर पर अपने उचित योगदान के करण ही मिलता है, तब नारी को उसका उचित सम्मान कैसे मिले यह भी विचार करना आवश्यक हो जाता है! हम पहले बता चुके हैं कि वैदिक काल में नारी को सम्मान की दृष्टि से ही नहीं बल्कि पूज्य-दृष्टि से देखा जाता था। आज की नारी अपने उसी सम्मान को पाना चाहती है तो उसे स्वयं को वैदिक नारी के साँचे में ढालना होगा। इस दिशा में विचार और व्यवहार करने वालों को एक बात और ध्यान में रखनी पड़ेगी। वर्तमान युग में परिवार व समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करते हुए दूसरों का हित व कल्याण करने वालों को उचित मान-सम्मान का मिलना उतना सहजव स्वभाविक नहीं दिखता। ऐसे में कई बार हम धीरज खोने लगते हैं, हमें लगता है कि हम जिनके लिये इतना कर रहे हैं, वे हमारे लिए प्रशंसा के दो शब्द भी नहीं बोलते। ऐसा सोचने वाले स्त्री-पुरुषों से मेरा निवेदन है कि जब उनके हृदय में ऐसा विचार उठे, तब वे अपने हृदय में तनिक गहरे झाँक कर देखें तो उन्हें कर्तव्य पालन और परहित करने के फलस्वरूप परमात्मा की कृपा व आशीर्वाद के रूप में ऐसी आत्म-सन्तुष्टि मिलती है, जिसके सामने लोक-प्रंशसा और सम्मान फीका और नीरस लगता है! दूसरी एक बहुत बड़ी और सर्वाधिक उलझन भरी समस्या यह है कि एक नारी स्वयं को वैदिक नारी के रूप में ढालने के लिए क्या करे? अपने विचारों और व्यवहार को उत्तम बनाने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त समय कौन सा है? सरल शब्दों में इसे यूँ कह सकते हैं कि आयु के कौन से पड़ाव में जीवन-सुधार की अधिक सम्भावना होती है? जीवन-सुधार की सम्भावना को लेकर सर्वाधिक उलझन इसको लेकर है कि इसकी शुरुआत कब करें?

जीवन-निर्माण की प्रक्रिया जीवन के साथ ही या यूँ कहें कि उससे भी पहले प्रारम्भ हो जाती है। पति-पत्नी के जिन रज-वीर्य से बालक का शरीर बनता है, उनके शोधन और सशक्तिकरण का विधान हमारे चिकित्सा-ग्रन्थों व आचार-ग्रन्थों में स्पष्ट शब्दों में मिलता है। अनियमित आचार विचार और अनुचित आहार-विहार वाले पति-पत्नी भावी बालक के जीवन की नींव ही दुर्बल कर डालते हैं। इसलिए जीवन-सुधार की शुरुआत एक पीढ़ी पहले ही कर दी जाए तो इससे बढ़िया कुछ

नहीं! ऐसा न हो पाये तो गर्भ धारण से लेकर बालक की जितनी छोटी आयु में जीवन-सुधार का काम पूर्ण सावधानी से प्रारम्भ कर दिया जाए, वह उतने ही उत्तम परिणाम देने वाला होगा। मुझे लगता है कि आज हमने कुछ आगे बढ़कर सोचने और करने की आवश्यकता है। मेरा अपना मानना यह है कि हमारी युवा पीढ़ी को अपने और अपनी भावी सन्तति के जीवन को सुधारने और सजाने-संवारने के लिए एक संकल्पित शुरुआत करनी पड़ेगी। वैसे तो जीवन-निर्माण के कार्य में स्त्री-पुरुष दोनों की महती भूमिका रहती है, लेकिन निःसन्देह नारी को इसके लिए अधिक तप-त्याग और बलिदान देने पड़ते हैं। हमारे प्राचीन चिकित्सा ग्रन्थ एवं आचार ग्रन्थ एक स्वर से-**'माता निर्माता भवति'** और **'गुरुणां माता गरीयशी'** का जो उद्घोष करते हैं, आज का उन्नत तकनीक सम्पन्न विज्ञान उसकी पूर्ण पुष्टि कर रहा है। गर्भस्थ शिशु के शरीर निर्माण और उसके मानसिक विकास पर माता के खान-पान, रहन-सहन और आचार-विचार से लेकर माँ की अच्छी-बुरी अनुभूतियों तक का विशेष प्रभाव पड़ता है। जन्म के बाद लोरियाँ गाकर सुलाने तथा पालन-पोषण सम्बन्धी माँ के व्यवहार से ही बालक परिवार व संसार से प्रारम्भिक स्तर पर जुड़ता है। प्राचीन परिपाटी की बात करें तो अक्षर-ज्ञान से लेकर सामान्य शिष्टाचार की शिक्षा बालक को देना माता का ही कर्तव्य है। इस विषय में महर्षि दयानन्द लिखते हैं-"बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हों---जब वह कुछ-कुछ बोलने लगे और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे, मान्य, पिता, साता, राजा, विद्वान आदि से भाषण, उनसे वर्तमान (व्यवहार) और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करे। --जब पाँच-पाँच वर्ष के लड़का-लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें।" ऋषिवर लिखते हैं-"वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी से नहीं।"

जीवन-निर्माण और जीवन-सुधार के सम्बन्ध में संक्षेप में थोड़ा सा प्रारम्भिक संकेत देना कई कारणों से उपयोगी लगा। प्रथम तो हम नारी के गौरव-सम्मान के सम्बन्ध में निर्णायक निष्कर्ष पर पहुँचना चाहते हैं! आज नारी अपने ढंग से अपना जीवन जीने के आग्रह के साथ अपना गौरव, मन-सम्मान पाना चाहती है जो कभी सम्भव नहीं। यह सच है कि भारतीय संस्कृति और प्राचीन साहित्य में नारी का सम्मान नर से कहीं बहुत ऊँचा था। आज की नारी समझ ले कि वह सम्मान नर की निर्मात्री नारी का था, न कि **'लिव इन रिलेशनशिप'** के रूप में उन्मुक्त देह-सुख के लिए आतुर फैशनेबिल नारी का। शोकेश में रखी बिक्री के योग्य वस्तुओं की तरह शरीर को आकर्षण का केन्द्र बनाये रखने वाली नारी अपने लिए पूज्य-दृष्टि की इच्छा रखती है तो यह उसकी आशा और उसके आचरण की विषमता को ही प्रकट करता है। कौन नहीं जानता कि संसार में सुख की आकांक्षा तो सभी रखते हैं, लेकिन सुख उन्हीं को मिलता है, जिनके काम सुख देने वाले होते हैं! मेरा बड़ा स्पष्ट मानना है कि सुख प्राप्त करने के सम्बन्ध में मानव जिस विकट विसंगति का शिकार है, नारी की सम्मान पाने की आकांक्षा भी उसी विकट विसंगति की एक बानगी है। उस विसंगति की एक झलक देखिये-

फलं धर्मं चेच्छन्ति, धर्म नेच्छन्ति मानवः।
फलं पापं नेच्छन्ति, पापं कुर्वन्ति यत्नतः।

अर्थात् धर्म का फल (सुख) तो सब चाहते हैं, लेकिन धर्म करना कोई नहीं चाहता। दूसरी ओर पाप का फल (दुःख) कोई नहीं चाहता लेकिन

पाप प्रयत्न पूर्वक करते रहते हैं। नारी आज सम्मान के सम्बन्ध में ऐसी ही विसंगति से ग्रस्त और त्रस्त है। आज की नारी तप-त्याग, बलिदान और कर्तव्य पालन का फल (सम्मान) तो चाहती है, लेकिन तप-त्याग, बलिदान और अपने पारिवारिक, सामाजिक कर्तव्यों का पालन करना नहीं चाहती। देह-श्रृंगार, स्वतन्त्रता के नाम पर उद्दण्डता, उच्छृंखलता व अमर्यादित आचरण का फल-भोग की वस्तु होना, वह नहीं चाहती, लेकिन ऐसा वह करते रहना चाहती है! नारी अगर सच में अपना सम्मान चाहती है तो एक माँ के रूप में उसके जो सन्तान-निर्माण सम्बन्धी कर्तव्य हैं, उन्हें सहर्ष स्वीकार कर ले। इच्छुक नारी-विशेष रूप से नई पीढ़ी अगर इस दिशा में कुछ करना चाहे तो उसके मार्ग दर्शन के लिए संकेत रूप में वह विवरण देना आवश्यक था।

दूसरी बात यह सांकेतिक विवरण देकर आज की नारी को एक उलाहना भी देना है कि आज का पुरुष अगर उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता, उसे पूज्या नहीं मानता तो इसमें सबसे बड़ा दोष उसी का है। नर तो सदा से नारी के हाथ का खिलौना रहा है और सदा रहेगा ! उसके जीवन का प्रारम्भ नारी के उदर में हुआ है। नारी रस-रक्त से उसका शरीर बना है। कच्ची मिट्टी के संजीव खिलौने की तरह वह पाँच वर्ष तक उसके सीने से लिपटा और उसके हाथों में खेलता रहा है। मानव के विचारों व भावनाओं को जो दिशा मिली है वह एक माँ के रूप में नारी के तत्कालीन आचार-विचारों और रहन-सहन के तौर-तरीकों से प्रेरित और प्रभावित रही है। इतना होने पर भी अपनी असावधानी और कर्तव्य पालन में हुई चूक के कारण हुए बिगाड़ का दोषारोपण किसी दूसरे पर करे तो यह उसकी दूसरी भूल है, उसकी अज्ञानता है। आज की माताएँ हृदय पर हाथ रखकर तनिक सोचकर बतायें कि वह एक पुत्र और पुत्री के लालन-पालन और खान-पान में कितना भेदभाव करती हैं? यद्यपि इस सब में परिवार के पुरुषों की भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती, लेकिन घर परिवार की आन्तरिक गतिविधियाँ-विशेषकर सन्तान-निर्माण सम्बन्धी कार्य-व्यवहार में नारी की प्रधानता को अस्वीकार करना या तो अज्ञानता है या हठधर्मिता। मेरा माँ के रूप में प्रत्येक नारी से एक विनम्र अनुरोध है कि वह भोजन व सुविधाओं के रूप में जितनी चिन्ता पुत्र की करती है वैसी ही चिन्ता पुत्री की भी किया करे तथा घर के कार्य-व्यवहर से लेकर आचार-विचार और सुसंस्कारों की दृष्टि से पुत्री का जितना ध्यान रखती है, उतना ही ध्यान पुत्र का भी रखा करे। देखा यह जाता है कि घर के कामों में माँ का हाथ बटाने-सहयोग करने का सारा काम पुत्रियाँ ही करती हैं। पुत्रों को ऐसा करते हुए अपवाद रूप में ही कहीं देखा गया हो। अच्छी और सच्ची माँ वही है जो पुत्रों को भी पुत्री के समान ही कार्य-सहयोग के लिए प्रेरित करे। पुत्री घर से कहीं बाहर जाए और नियत समय पर घर न लौटे तो माँ उससे बहुत पूछताछ करती है, प्रतिपल का रुपयों की तरह हिसाब माँगती है। नारीवादी सोच के झण्डाबरदार इसे बुरा मानते हैं और उसे पुत्रों की तरह खुली छूट देने की प्रबल वकालत करते हैं, यह बुद्धिमानी नहीं। बुद्धिमानी इसमें है कि घर से बाहर जाने पर और बाहर विलम्ब होने पर जैसी पूछताछ पुत्रियों से की जाती है वैसी ही पूछताछ पुत्रों से करनी चाहिए। अनुचित पूछताछ पुत्रियों से भी न हो तथा अनावश्यक छूट पुत्रों को भी न देने वाली माँ को ही सच्ची-अच्छी माँ कहा जा सकता है! निश्चित रूप से पुत्री के अनुचित आचरण से परिवार की प्रतिष्ठा धूमिल हो जाती है, लेकिन पुत्र के वैसे ही दुराचार से कुल उतना ही कलंकित नहीं होता ऐसा मानना सबसे बड़ी मूर्खता है! ऐसी मूर्खता के बीज जिस मन-मस्तिष्क में हैं, उन्हें समूल नष्ट करना पड़ेगा। **(क्रमशः)**

भागवत पुराण में झूठे आरोप लगाकर श्री कृष्ण को कलंकित किया है

–कृष्णचन्द्र गर्ग, (०१७२-४०१०६७९)

(गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा सम्वत २०६५ में बासठवां पुनर्मुद्रण के रूप में प्रकाशित श्रीमद्भागवत पुराण के द्वितीय खंड से उद्धृत)

चीरहरण–

एक दिन सब कुमारियों ने प्रतिदिन की भांति यमुना जी के तट पर जाकर अपने-अपने वस्त्र उतार दिये और भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों का गान करती हुईं बड़े आनन्द से जल-क्रीड़ा करने लगीं। परीक्षित–भगवान् श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शंकर आदि योगेश्वरों के भी ईश्वर हैं। उनसे गोपियों की अभिलाषा छिपी न रही। वे उनका अभिप्राय जानकर अपने सखा ग्वालबालों के साथ उन कुमारियों की साधना सफल करने के लिये यमुना तट पर गये। उन्होंने अकेले ही उन गोपियों के सारे वस्त्र उठा लिये और बड़ी फुर्ती से वे एक कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये। साथी ग्वालबाल ठठा ठठाकर हँसने लगे और स्वयं श्रीकृष्ण भी हँसते हुए गोपियों से हँसी की बात कहने लगे।

सुन्दरियो ! तुम्हारी इच्छा हो तो अलग-अलग आकर अपने-अपने वस्त्र ले लो, या सब एक साथ ही आओ। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। भगवान की यह हंसी-मसखरी देखकर गोपियों का हृदय प्रेम से सराबोर हो गया।

वे ठंडे पानी में कण्ठ तक डूबी हुई थीं और उनका शरीर थर-थर काँप रहा था। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा–देखो, हम जाड़े के मारे ठिठुर रही हैं। तुम हमें हमारे वस्त्र दे दो। प्यारे श्याम सुन्दर ! हम तुम्हारी दासी हैं। तुम जो कुछ कहोगे, उसे हम करने को तैयार हैं। हमारे वस्त्र हमें दे दो, नहीं तो हम जाकर नन्द बाबा से कह देंगी। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–कुमारियो ! तुम्हारी मुसकान पवित्रता और प्रेम से भरी है। देखो, जब तुम अपने को मेरी दासी स्वीकार करती हो और मेरी आज्ञा का पालन करना चाहती हो तो यहाँ आ कर अपने-अपने वस्त्र ले लो।

परीक्षित् ! वे कुमारियाँ ठंड से ठिठुर रही थीं, काँप रही थीं। भगवान् की ऐसी बात सुन कर वे अपने हाथों से गुप्त अंगों को छिपाकर यमुना जी से बाहर निकलीं। उनके इस शुद्ध भाव से भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए। उनको अपने पास आयी देखकर उन्होंने गोपियों के वस्त्र अपने कंधों पर रख लिये और बड़ी प्रसन्नता से मुसकराते हुए बोले। परन्तु इस अवस्था में वस्त्रहीन होकर तुम ने जल में स्नान किया है। इससे तो जल के अधिष्ठातृ देवता वरुण का तथा यमुनाजी का अपराध हुआ है। अत: अब इस दोष की शान्ति के लिये तुम अपने हाथ जोड़कर सिर से लगाओ और उन्हें झुककर प्रणाम करो, तदनन्तर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ।

भगवान् श्रीकृष्ण की बात सुनकर उन व्रजकुमारियों ने ऐसा ही समझा कि वास्तव में वस्त्रहीन होकर स्नान करने से हमारे व्रत में त्रुटि आ गयी। अत: उसकी निर्विघ्न पूर्ति के लिये उन्होंने समस्त कर्मों के साक्षी श्रीकृष्ण को नमस्कार किया। क्योंकि उन्हें नमस्कार करने से ही सारी त्रुटियों और अपराधों का मार्जन हो जाता है। जब यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि

सब की सब कुमारियाँ मेरी आज्ञा के अनुसार प्रणाम कर रही हैं, तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके हृदय में करुणा उमड़ आयी और उन्होंने उनके वस्त्र दे दिये।

परीक्षित! गोपियों ने अपने-अपने वस्त्र पहन लिये। परन्तु श्रीकृष्ण ने उनके चित्त को इस प्रकार अपने वश में कर रखा था कि वे वहाँ से एक पग भी न चल सकीं। अपने प्रियतम के समागम के लिये सजकर वे उन्हीं की ओर लजीली चितवन से निहारती रहीं।

रासलीला-

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ यमुनाजी के पावन पुलिन पर, जो कपूर के समान चमकीली बालू से जगमगा रहा था, पदार्पण किया। वह यमुनाजी की तरल तरंगों के स्पर्श से शीतल और कुमुदिनी की सहज सुगन्ध से सुवासित वायु के द्वारा सेवित हो रहा था। उस आनन्दप्रद पुलिन पर भगवान् ने गोपियों के साथ क्रीड़ा की। हाथ फैलाना, आलिंगन करना, गोपियों के हाथ दबाना, उनकी चोटी, जाँघ, नीवी और स्तन आदि का स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोद पूर्ण चितवन से देखना और मुसकाना-इन क्रियाओं के द्वारा गोपियों के दिव्य काम रस को, परमोज्ज्वल प्रेम भाव को उत्तेजित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें क्रीड़ा द्वारा आनन्दित करने लगे।

महारास-

परीक्षित ! गोपियों का सौभाग्य लक्ष्मीजी से भी बढ़कर है। लक्ष्मीजी के परम प्रियतम एकान्त वल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण को अपने परम प्रियतम के रूप में पाकर गोपियाँ गान करती हुई उनके साथ विहार करने लगीं। भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके गलों को अपने भुजपाश में बाँधा रखा था, उस समय गोपियों की बड़ी अपूर्व शोभा थी उनके कानों में कमल के कुण्डल शोभायमान थे। घुँघराली अलके कपोलों पर लटक रही थीं। पसीने की बूँदें झलकने से उनके मुख की छटा निराली ही हो गयी थी। वे रासमण्डल में भगवान् श्रीकृष्ण के साथ नृत्य कर रही थीं। उनके कंगन और पायजेबों के बाजे बज रहे थे। भौरे उनके ताल-सुर में अपना सुर मिलाकर गा रहे थे। और उनके जूड़ों तथा चोटियों में गुँथे हुए फूल गिरते जा रहे थे। परीक्षित! जैसे नन्हा-सा शिशु निर्विकार भाव से अपनी परछाई के साथ खेलता है, वैसे ही रमारमण भगवान श्रीकृष्ण कभी उन्हें अपने हृदय से लगा लेते, कभी हाथ से उनका अंगस्पर्श करते। कभी प्रेम भरी तिरछी चितवन से उनकी ओर देखते तो कभी लीला से उन्मुक्त हँसी हँसने लगते। इस प्रकार उन्होंने व्रज सुन्दरियों के साथ क्रीड़ा की, विहार किया।

कुब्जा से क्रीड़ा-

तब कुब्जा स्नान, अंगराग, वस्त्र, आभूषण, हार, गन्ध (इत्र आदि), ताम्बूल और सुधासव आदि से अपने को खूब सजाकर लीलामयी लजीली मुसकान तथा हाव-भाव के साथ भगवान् की ओर देखती हुई उनके पास आयी। कुब्जा नवीन मिलन के संकोच से कुछ झिझक रही थी। तब श्याम-सुन्दर श्रीकृष्ण ने उसे अपने पास बुला लिया और उसकी कंकण से सुशोभित कलाई पकड़कर अपने पास बैठा लिया और उसके साथ क्रीड़ा करने लगे।

भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों को अपने काम-संतप्त हृदय, वक्षःस्थल और नेत्रों पर रखकर कुब्जा उनकी दिव्य सुगन्ध लेने लगी और इस प्रकार उसने अपने हृदय की सारी आंधि-व्याधि शान्त कर ली। वक्षःस्थल से सटे हुए आनन्दमूर्ति प्रियतम श्यामसुन्दर का अपनी दोनों भुजाओं से गाढ़ आलिंगन करके कुब्जा ने दीर्घकाल से बढ़े हुए विरहताप को शान्त किया।

परन्तु उस दुर्भागा ने उन्हें प्राप्त करके भी

व्रजगोपियों की भांति सेवा न माँगकर यही माँगा। 'प्रियतम ! आप कुछ दिन यहीं रहकर मेरे साथ क्रीड़ा कीजिये। क्योंकि हे कमलनयन। मुझ से आपका साथ नहीं छोड़ा जाता। परीक्षित भगवान् श्रीकृष्ण सबका मान रखनेवाले और सर्वेश्वर हैं। उन्होंने अभीष्ट वर देकर उसकी पूजा स्वीकार की और फिर अपने प्यारे भक्त उद्धवजी के साथ अपने सर्वसम्मानित घर पर लौट आए।

१६००० रानियों से विवाह—

श्री शुकदेव जी कहते हैं—परीक्षित ! जब पृथ्वी ने भक्तिभाव से विनम्र होकर इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति—प्रार्थना की, तब उन्होंने भगदत्त को अभयदान दिया और भौमासुर के समस्त सम्पत्तियों से सम्पन्न महल में प्रवेश किया। वहाँ जाकर भगवान ने देखा कि भौमासुर ने बलपूर्वक राजाओं से सोलह हजार राजकुमारियों छीनकर अपने यहाँ रख छोड़ी थी। जब उन राजकुमारियों ने अन्तः पुर में पधारे हुए नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीकष्ण को देखा, तब वे मोहित हो गयीं और उन्होंने उनकी अहैतुकी कृपा तथा अपना सौभाग्य समझकर मन—ही—मन भगवान् को अपने परम प्रियतम पति के रूप में वरण कर लिया। उन राजकुमारियों में से प्रत्येक ने अलग—अलग अपने मन में यही निश्चय किया कि 'ये श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों और विधाता मेरी इस अभिलाषा को पूर्ण करें। इस प्रकार उन्होंने प्रेम—भाव से अपना हृदय भगवान् के प्रति निछावर कर दिया। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उन राजकुमारियों को सुन्दर—सुन्दर निर्मल वस्त्राभूषण पहना कर पालकियों से द्वारका भेज दिया और उनके साथ ही बहुत—से खजाने, रथ, घोड़े तथा अतुल सम्पत्ति भी भेजी।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने एक ही मुहूर्त में अलग—अलग भवानों में अलग—अलग रूप धारण करके एक ही साथ सब राजकुमारियों का शास्त्रोक्त विधि से पाणिग्रहण किया। सर्वशक्तिमान् अविनाशी भगवान के लिये इसमें आश्चर्य की कौन—सी बात है। परीक्षित्! भगवान की पत्नियों के अलग—अलग महलों में ऐसी दिव्य सामग्रियाँ भरी हुई थीं, जिनके बराबर जगत में कहीं भी और कोई भी सामग्री नहीं है, फिर अधिक की तो बात ही क्या है। उन महलों में रहकर मति—गति के परे की लीला करने वाले अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण अपने आत्मानन्द में मग्न रहते हुए लक्ष्मी जी की अंशस्वरूपा उन पत्नियों के साथ ठीक वैसे ही विहार करते थे, जैसे कोई साधारण मनुष्य घर—गृहस्थी में रहकर गृहस्थ धर्म के अनुसार आचरण करता हो।

श्रीकृष्ण के जीवन चरित का प्रामाणिक स्रोत महाभारत की पुस्तक है। महाभारत का युद्ध द्वापर युग के अन्त में अब से लगभग ५२०० वर्ष पूर्व हुआ था। महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण का जीवन बड़ा पवित्र और महान था। उन्होंने जन्म से मृत्यु तक कोई भी बुरा काम किया हो—ऐसा नहीं लिखा। महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण की एक ही पत्नी थी—रुकमणी।

योगेश्वर श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में लिखा है—देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत बनाने वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जादासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाये हैं। इसको पढ़ पढ़ा सुन—सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती? ❑❑

महर्षि की दूरदर्शिता !!!

१८७५ में मुम्बई में जब कई उत्साही सज्जनों ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के समक्ष नया 'समाज' स्थापित करने का प्रस्ताव रखा, तब उस दीर्घदृष्टा ऋषि ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए और उन लोगों को सावधान करते हुए कहा–

"भाई हमारा कोई स्वतन्त्र मत नहीं है। मैं तो वेद के अधीन हूँ और हमारे भारत में पच्चीस कोटि (उस समय की भारत की जनसंख्या) आर्य हैं। कई-कई बात में किसी-किसी में कुछ-कुछ भेद हैं, सो विचार करने से आप ही आप छूट जाएगा।

मैं संन्यासी हूँ और मेरा कर्तव्य यही है कि जो आप लोगों का अन्न खाता हूँ, इसके बदले जो सत्य समझता हूँ, उसका निर्भयता से उपदेश करता रहूँ। मैं कुछ कीर्ति का रागी नहीं हूँ। चाहे कोई मेरी स्तुति करे या निन्दा करे, मैं अपना कर्तव्य समझ के धर्म-बोध कराता हूँ। कोई चाहे माने वा न माने, इसमें मेरी कोई हानि लाभ नहीं है। ....आप यदि समाज से पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हैं तो समाज स्थापित कर लो। इसमें मेरी कोई मनाई नहीं है। परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रखोगे तो आगे गड़बड़ाध्याय हो जाएगा।

मैं तो जैसा अन्य को उपदेश देता हूँ, वैसा ही आपको भी करूँगा और इतना लक्ष्य में रखना कि मेरा कोई स्वतन्त्र मत नहीं है और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हूँ। इससे यदि कोई मेरी गलती आगे पाई जाए तो युक्तिपूर्वक परीक्षा करके इस को भी सुधार लेना। यदि ऐसा न करोगे तो आगे यह भी एक 'मत' (सम्प्रदाय) हो जाएगा और इसी प्रकार से 'बाबा वाक्य प्रमाणम्' करके इस भारत में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित होके, भीतर-भीतर दुराग्रह रखके धर्मान्ध होके लड़कर नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके यह भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है, इसमें यह भी एक मत बढ़ेगा।

मेरा अभिप्राय तो है कि इस भारतवर्ष में नाना मतमतान्तर प्रचलित हैं, तो भी वे सब वेदों को मानते हैं। इससे वेदशास्त्र रूपी समुद्र में यह सब नदी-नाव पुनः मिला देने से धर्म-ऐक्यता होगी और धर्म ऐक्यता से सांसारिक और व्यावहारिक सुधारणा होगी और इससे कला-कौशल आदि सब अभीष्ट सुधार होके मनुष्य मात्र का जीवन सफल होके अन्त में अपना धर्म बल से अर्थ, काम और मोक्ष मिल सकता है। (आर्ष दृष्टि) ❑❑

(पृष्ठ २ का शेष) **वेदोपेदेश**

इसी प्रकार आत्मा को न मानना, उसे जन्य किन्तु अमर मानना आदि अनेक प्रकार की अविद्या है। अज्ञान के कारण हिंसा आदि पापों को लोग पाप नहीं मानते, वरन् कई मूढ़ इनको परमेश्वर की प्रसन्नता का साधन मानकर पुण्य समझते हैं। कितनी दयनीय है उनकी दशा ! संसार में जितने पाप होते हैं, उन सबका मूल है यह अविद्या । भगवान् ही यथार्थ ज्ञान देते हैं, अतः उन्हीं से प्रार्थना है कि हम अदिति के=तुझ जगन्माता के पापी न बनें। यथार्थ ज्ञान दे, पापभावना का नाश कर । ज्ञान होने पर भी कई मनुष्य पाप करते हैं। उनके अन्दर पापों की वासनाएँ प्रबल होती हैं । भगवत्कृपा से ही वासनाओं का नाश हो सकता है, अतः उसी से प्रार्थना की है– **'व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने'** हे ज्ञानाग्नि से पापवासना को दग्ध करनेवाले ! मेरी पापभावनाओं को सर्वथा शिथिल कर दे। ❑❑

आर. एन. आई. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S.
०५-११/०६/२०२४
भार ४० ग्राम

जून २०२४

रजिस्टर्ड नं० DL (DG-11)/8029/2024-26
लाईसेन्स नं० यू. (डी०एन०) १४४/२०२४-२६
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2024-26

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएँ, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

–दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष एवं तार्किक समीक्षा के लिए
उत्तम कागज, मनमोहक जिल्द एवं सुन्दर आकर्षण मुद्रण
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

प्रचार संस्करण	मुद्रित मूल्य	प्रचारार्थ
प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23x36%16	₹60	₹40
विशेष संस्करण (सजिल्द) 23x36%16	₹100	₹60
पॉकेट संस्करण	₹80	₹50
विशिष्ट पॉकेट संस्करण	₹150	₹100
स्थूलाक्षर (सजिल्द) 20x30%8	₹200	₹120
उपहार संस्करण	₹1100	₹750
सत्यार्थ प्रकाश अंग्रेजी अजिल्द	रु. २५०/-	रु. १६०/-
सत्यार्थ प्रकाश अंग्रेजी सजिल्द	रु. ३००/-	रु. २००/-

प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं

कृपया एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द जी की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें..

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-6
Ph : 011-43781191, 09650522778
E-Mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में ....
ग्राम.................................
डा०.................................
जिला.................................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।